नरबाधा

लेखक

डॉ हरदेव पचारिया

प्रकाशक

महर्षि गौतम प्रकाशन

डॉ हरदेव पचारिया स्मृति शैक्षणिक एव सामाजिक उन्नयन संस्थान

पचारिया कॉम्पलैक्स नई लेन गगाशहर बीकानेर

प्रकाशक	वैद्य विद्यासागर पचारिया सचिव महर्षि गौतम प्रकाशन डॉ हरदेव पचारिया स्मृति शैक्षणिक एव सामाजिक उन्नयन सस्थान गगाशहर बीकानेर
सस्करण	2003
मुद्रक	कल्याणी प्रिन्टर्स मालगोदाम रोड बीकानेर
मुख्य वितरक	शशि प्रकाशन D 2 मुरलीधर व्यास नगर बीकानेर
मूल्य	80 00 रुपये

मेरे कुलगुरु

ऋषिराज स्व श्री दुलारामजी पचारिया

के

श्रीचरणों

में

श्रद्धा सहित समर्पित

प्राक्कथन

नरबाधा औपन्यासिक लेखन की निश्शेष सभावना को नमन

उत्तरप्रदेश प्रान्त का वर्तमान जिला मुख्यालय इटावा इस उपन्यास में अकित कालखण्ड में कदाचित एक जमींदारी गाव ही रहा होगा। लगभग अढाई हजार घरों में पचहत्तर प्रतिशत ठाकुरों की आबादी वाले इस गाव के जमींदार ठाकुर उमरावसिह के पारिवारिक परिवेश से उठकर आकार ग्रहण करती यह कथा एक विशिष्ट कालखण्ड की समग्र सामाजिक मनोदशा को हमारे सामने रखती है। पेशे से विधिवेत्ता और वृत्ति से चिकित्सक और समाज-सुधारक डॉ हरदेव पचारिया का यह औपन्यासिक कर्तृत्व हमारा परिचय उस निश्शेष सभावना से कराता है, जिसका एकमात्र प्रमाण इस कथाकृति के रूप में डाक्टर साहब छोड गए हैं।

इस उपन्यास को पढकर इसके रचयिता की दूसरी कथाकृतियों के प्रति जिज्ञासा और कौतुक उत्पन्न होना स्वाभाविक लगता है, क्योंकि यह कृति अपने सक्षिप्त कलेवर के उपरान्त प्राय एक सम्पूर्ण कथाकार से हमारा परिचय कराने में सक्षम है। स्थापित किस्म के कथाकार न होने के उपरान्त डॉ पचारिया इस कथाकृति में कथा का ताना-बाना बुनने और घटनाक्रम को क्रमश विकसित करने के मामले में एक निष्णात कथाकार की तरह व्यवहार करते नजर आते हैं। कथाकार के निष्णात होने का सर्वोच्च निकष, मेरे समीप, यही है कि वह अपने समूचे कथा-व्यवहार में अपने वैयक्तिक दृष्टिकोण के प्रति निरपेक्षता को कितनी दूर तक साधे हुए चल पाता है। इस निकष पर देखें, तो इस कथाकृति में अनेक मूल्यों, आदर्शों और विमर्शों की भीषण टकराहट के बावजूद स्वय कथाकार सर्वथा किनारे खडा नजर आता है, वह कोई पक्षधर मुद्रा अख्तियार नहीं करता, किसी प्रकार का मूल्य-निर्णय नहीं देता, बल्कि पाठक-मन पर गहरे विश्वास के साथ, अपनी कथा के चरित्रों के भीतरी ससार का अचूक, मनोवैज्ञानिक, विश्वसनीयता-भरा चित्रण कर के, तटस्थ और अलग जा खडा होता है।

उपन्यास की कथा का आरम्भ इटावा ग्राम के जमींदार ठाकुर उमरावसिह की जमींदारी बैठक से होता है। उपन्यास के प्रत्येक चरित्र की भीतरी बनावट की, कथा के संश्लिष्ट ताने-बाने में बिना किसी सरलीकरण के, झलक दिखा देने की कथाकार की युक्ति अनेकश बाग्ला के महान कथाशिल्पी शरत्चन्द्र की बरबस याद दिलाती है। उपन्यास के पहले ही दृश्य

में ठाकुर उमरावसिह के भीतरी मनुष्य की झलक त्रिपुण्डधारी के साथ उनके सवाद में अत्यन्त सहज और अकृत्रिम ढग से मिल जाती है। इसी युक्ति के सधे हुए प्रयोग के माध्यम से हम ठाकुर उमरावसिह की पत्नी शोभा, विमाता से जन्मी बहन सुमन, आगन्तुक वीरेन्द्रसिह, सुरेन्द्रसिह और उनकी पुत्री नरबाधा, सत्यपाल आदि प्रमुख चरित्रों के अन्तर्लोक से कथा-प्रवाह के साथ ही रू-ब-रू होते जाते हैं। पडिताऊ भाषा में जिसे 'साधारणीकरण' कहते हैं, वह इस उपन्यास के ततु-ततु में सिद्ध है अर्थात् पठनीयता की दृष्टि से उपन्यास आद्यन्त रोचक बना रह सका है।

उपन्यास में से अनेक विमर्शात्मक सरणिया नि सृत होती प्रतीत होती हैं, तदपि इसके केन्द्र में 'नारी-विमर्श को सहज ही रेखाकित किया जा सकता है। क्षयोन्मुख जमींदारी के खडहरप्राय स्वरूप, राष्ट्रीय आन्दोलन, आधुनिकता के आगमन आदि की आहटों को अपने कलेवर में सजोये इस उपन्यास का मुख्य सरोकार सधिकाल की देहरी पर ठिठकी खडी स्त्री के अस्तित्व से जुडे सवालों से है। उपन्यास की दोनों नायिकाए, सुमन और नरबाधा, प्रदत्त व्यवस्थाओं से टकराती हुई आत्मनिर्णय की चुनौतियों का सामना करती हैं। ठकुरानी शोभा परपरागत स्त्री का एक मॉडल है जो दोनों नायिकाओं की अस्तित्वमूलक प्रश्नाकुलता को एक ठोस परिपार्श्व में उभारने का काम करता है। कहना न होगा, ऐसे परिपार्श्व की रचना भी अन्यान्य कथा-युक्तियों के प्रयोगों की तरह ही, डॉ पचारिया की कथात्मक सकल्पना में अन्तर्निहित सभावनाओं की परिचायक है - निश्शेष सभावनाओं की।

सक्षेप में, उपन्यास 'नरबाधा' हिन्दी उपन्यास के एक ऐसे हस्ताक्षर से हमारी भेंट कराता है, जो कदाचित् अपनी समावनाओं को मुखर कर एक बहु-परिचित नाम हो सकता था। डॉ हरदेव पचारिया अब स्मृति-शेष हैं। उनकी यह कथाकृति इस रूप में हम सब कथा-साहित्य के प्रेमीजनों की साझी धरोहर है कि इसमें हम अपनी सर्जनात्मक उत्कठा का एक बेहद मासूम और आत्मीय चेहरा खोज पाते हैं।

-मालचन्द तिवाड़ी

पहला परिच्छेद

इटावा यू पी प्रान्त का एक सुप्रसिद्ध गाँव है। यह गाँव व्यापारिक तथा कृषि के दृष्टिकोण से हमेशा से ही अच्छा रहा है। आज भी इस गाँव में लगभग अढाई हजार से अधिक घर हैं, जिनमें पचहत्तर प्रतिशत आबादी ठाकुरों की है। यह गाँव उत्तरी भारत के कृषिप्रधान गाँवों में से एक सुप्रसिद्ध गाँव है। उस दिन गाँव की पचहत्तर फीसदी जमीन के स्वामी ठाकुर उमरावसिह अपनी बैठक में अन्य ठाकुरों के साथ बैठे हुक्के के कश ले रहे थे और अपने कारिन्दे त्रिपुण्डधारी की रिपोर्ट सुन रहे थे।

त्रिपुण्डधारी जब तक किसी भी घटना के सम्बन्ध में नौन-मिरच नहीं लगा देता, तब तक उसे सन्तोष प्राप्त नहीं होता। उसकी उस चटपटी बात को सुनकर किंचित् विस्मित स्वर में ठाकुर उमरावसिह ने कहा, "यह कभी नहीं हो सकता, त्रिपुण्डधारी ! भले ही एक पाई भी हाथ न लगे, लेकिन मैं उस दीन विधवा ब्राह्मणी के मुख का कौर छीन नहीं सकता।"

अपनी समस्त चातुरी को असफल होते देखकर त्रिपुण्डधारी ने अपना आखिरी हथियार प्रयोग में लाने का निश्चय किया। उसने विनीत स्वर में कहा, "हुजूर, हजारों रुपये डूब जायेंगे। इसके साथ ही साथ कर तथा मालगुजारी जमा करने की अवधि भी तो समाप्त हो गई है। मैं ठीक कहता हूँ, सरकार ! उस विधवा के पास बहुत-सी सम्पत्ति छिपी पडी है। बस, आपके इशारे-भर की देर है।"

त्रिपुण्डधारी अपनी बात समाप्त ही न कर सका था कि ठाकुर साहब ने डाँटते हुए उच्च स्वर में कहा, "त्रिपुण्डधारी !"

बस, त्रिपुण्डधारी की अन्तरात्मा देवी-देवताओं को सहायतार्थ पुकारने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी। कारण, वह भलीभाँति जानता था कि ठाकुर साहब की इस डपट का मतलब क्या है ? और इस डपट के पश्चात् क्या होगा, इसकी कल्पनामात्र से ही वह सिहर उठा। वह अपनी जबान के ताला लगाकर मूक भाव से खडा हो गया। क्षणभर मौन धारण करने के पश्चात् ठाकुर

साहब ने तनिक धीमे स्वर में कहना शुरू किया, "त्रिपुण्डधारी ! तनिक सभ्य आदमी की तरह बात करना सीखो ! मैं आज निश्चित रूप से तुम्हें यह बता देता हूँ कि किसी भी आपत्ति की आशका मुझे एक विधवा के एकमात्र आश्रय को छीनने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। अच्छा, अब इस समय तुम घर जाओ, मैं कुछ अन्य कामों में जुटा हुआ हूँ।"

त्रिपुण्डधारी भलीभाँति जानता था कि ठाकुर साहब के एक बार जाने की आज्ञा देने के पश्चात् वहाँ क्षणभर भी ठहरना असम्भव था। अत उसने सिर झुकाकर कहा, "अच्छा सरकार ! परन्तु मेरी इच्छा एक बात और कहने की थी !"

ठाकुर साहब ने अपनी दृष्टि दीवाल की घडी पर लगाई और झटके-से कहा, "अच्छा, बतलाओ ! तुम्हें क्या कहना है ?"

"सरकार ! क्या आपको सुरेन्द्रसिह का मामला याद है ?"

"वही न, क्षमा किया हुआ। बकाया भी अपनी जमीन बेचकर वसूल किया था ?" ठाकुर साहब ने जरा सोचते हुए कहा।

"हाँ, सरकार ! वही।" त्रिपुण्डधारी ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया, "तो क्या हुआ उन्हें ?"

"कुछ नहीं। बात सिर्फ यह थी कि नरबाधा नाम की उनकी एक लडकी है। उस पुखे के रामशरण व्यास ने यह बतलाया है कि उस लडकी की हत्या का षड्यत्र रचा जा रहा है।"

ठाकुर साहब के चेहरे पर यह समाचार सुनकर वर्षों बाद मुस्कराहट नाचने लगी और इसी वक्त दूसरे कमरे के भीतर से भी किसी के जोर से हँसने की ध्वनि आई। इसके साथ ही कमरे की ओर नजर डालते हुए ठाकुर साहब ने कहा "बस, अब देर नहीं है। मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ !' और फिर त्रिपुण्डधारी की ओर देखकर पूछा, "तुम क्या कह रहे हो ? हत्या होने वाली है ?

"हुजूर ! रामशरण व्यास ने यही सूचना दी थी। लेकिन वास्तव में बात यह है कि वह काफी समय से सुरेन्द्रसिह के पास रहती है और उसे पिता के सम्बोधन से पुकारती है। उसके वहाँ रहकर वह क्या करता है, सो ईश्वर जाने। लेकिन वह घुमक्कड अवश्य है। वह गाँव-गाँव में घूमकर स्त्रियों की सभा करती है, भाषण देती है कि औरतें परदा त्यागें, जूते पहनें और सड़कों पर मेमों की तरह स्वतत्र घूमें। उसकी बात भला कौन मान सकता है, सरकार? गाँव की सभी जवान और बूढ़ी स्त्रियों ने मिलकर यह निश्चय किया है कि उसे पकडकर कोठरी में ठूँस दिया जाय। कितना आश्चर्य है सरकार ? वह लडकी कहती है कि स्त्रियाँ घर से बाहर निकल आवें !

ठाकुर साहब को नरबाधा से मिलने का एक बार अवसर प्राप्त हो चुका था और

उसके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। उसे लोग पकडकर एक कमरे में बन्द कर दें, इसकी कल्पनामात्र ही उनके लिए असह्य थी। उन्होंने पूछा, "त्रिपुण्डधारी ! रामशरण से कह देना कि वे मुझसे आज शाम को ही एक बार मिल लेवें। अच्छा, अब तुम जाओ !" इसके बाद ठाकुर साहब मकान के भीतर चले गये और अपनी भगिनी सुमन के शान्त, गम्भीर और कान्तिमय मुखमडल की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा, "कहो, सुमन !"

"क्या समय हो गया है, भैया ? आप तो त्रिपुण्डधारी की बातें सुनने में इतने मग्न थे कि समय की चिन्ता भी आपको नहीं रही।"

ठाकुर साहब हँसने लगे और बोले, "मैं तो तुम्हारे अनुशासन से तग आ गया, सुमन !" और जरूरी काग़जात सन्दूक में रखने लगे।

बक्स में कागजात रखते हुए ठाकुर साहब ने फिर कहा, "तुम्हारी भाभी कहती है कि तुम्हारे अनुशासन के कारण ही मैं चौपट हो गया हूँ।"

भाभी की बात सुनते ही सुमन के हँसमुख चेहरे पर अकस्मात गम्भीरता छा गई।

ठाकुर साहब ने अपनी बहन को इस प्रकार से गम्भीर होते देखकर कहा, "प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना स्वभाव होता है। ईश्वर ही सुख और दुख देता है। जो मनुष्य इस मर्म को समझता है, वही बुद्धिमान है।"

फिर सुमन की ठोडी ऊपर को करते हुए उन्होंने पूछा, "आज तुम्हारी भाभी को क्या हो गया है ?" सुमन ने बलात् अपने चेहरे का रुख बदला और उत्तर दिया, "वे तो हमेशा बक-बक करती रहती हैं। यदि अभी भाभी सुन लें तो तुरन्त गालियों और प्रश्नों की झडी लग जायेगी।" इतना कहकर सुमन हँसने लगी।

सुमन के स्वर में परिहास का भाव होते हुए भी ठाकुर साहब इस भाव को महत्त्व नहीं दे सके। उन्होंने आर्त स्वर में कहा, "सुमन, मैं समझ नहीं पाता कि वह क्यों " वे अपनी बात समाप्त भी नहीं कर सके थे कि उनकी आँखें डबडबा आई और कण्ठावरोध हो गया। सुमन ने अपने भाई के बालों में अगुली फेरते हुए कहा, "नहीं, भैया ! आप यह सब चिन्ता त्याग दो। चिन्ता के कारण ही आपका ज्वर नहीं उतरता। आज तो ज्वर मालूम नहीं होता।" कहते हुए सुमन ने अपने भाई के शरीर का स्पर्श किया और कहा, "नहीं, अभी तक तो नहीं आया।"

भाई बहन के हृदय तनिक समय के लिए प्रेम से अभिभूत हो गये। फिर सुमन ने अचानक घडी की ओर देखा और कहा "देर मत करो भैया ! मैं अभी साबूदाने लाये देती हूँ, खाकर विश्राम करो।"

सुमन के कमरे से बाहर होते ही ठाकुर साहब के छ वर्ष के बच्चे तरुण ने आकर

उसका पल्ला पकड लिया और रोने लगा। सुमन ने बच्चे को गोद में लेकर गले से लगा लिया और पूछने लगी, "क्या हुआ तरुण ? माँ ने डाँटा है क्या ?"

तरुण ने अपने दोनों छोटे-छोटे हाथों से अपनी बुआ के कधों को पकडते हुए कहा, "हूँ।"

"समझी, तुमने कुछ बदमाशी की होगी ! क्या किया था तुमने ?" सुमन ने तरुण का मुँह चूमते हुए पूछा। इसी समय उसने देखा कि उसकी भाभी शोभा एक हाथ में ईंट लिए खडी हुई है। सुमन भाभी को देखकर क्षणभर के लिए सहम गई और फिर तरुण को बाहर की ओर ले जाने का उपक्रम करने लगी। इसी समय शोभा ने गरजते हुए अपने पुत्र से कहा, "दुष्ट कहीं का, उतर नीचे ! देखूँ, तेरी बुआ कितना प्रेम करती है और कैसे बचाती है ? हड्डी-पसली सब चूर करके रख दूँगी ! चुपचाप से नीचे उतर जा, नहीं तो खैर नहीं है !"

तरुण ने और जोर-से अपनी बुआ का कन्धा पकड लिया।

तत्क्षण ही शोभा ने आग उगलते हुए कटु शब्दों में कहा, "सुमन ! पटक दे इस बदमाश को। इसी में तेरी खैर है। मैं देखूँगी कि यह क्या करता है ?"

सुमन ने बलात् तरुण के दोनों हाथ छुडाकर उसे नीचे लिटा दिया और अश्रु पोंछती हुई बाहर चली गई।

तरुण की पीठ पर ईंट बरसने ही वाली थी कि ठाकुर साहब ने पुकारा, "कोन है? शोभा ! इधर आओ।"

शोभा ने विचारा तक नहीं कि उसके पति पास वाले कमरे में बैठे हैं। शोभा के हाथ तरुण को मारने के लिए उठे थे, सो वहीं रह गये। तरुण अवसर देखकर वहाँ से भाग गया और वहाँ चला गया जहाँ कि उसकी बुआ बैठी थी।

लेकिन शोभा अपने स्थान से टस-से-मस नहीं हुई। ठाकुर साहब ने फिर पुकारा, "क्यों शोभा ! सुनो।"

शोभा काँपती हुई पास गई और पूछा, "आधी रात होने को आई है, अभी बैठे हो?" और कारण जानने के लिए पति का मुँह ताकने लगी।

ठाकुर साहब ने कहा, "बैठो !"

शोभा बैठ गई और उनकी ओर देखते हुए पूछा, "कहिए क्या कहते हो ? मैं अधिक देर तक नहीं बैठ सकती। अभी-अभी तो बीमारी से उठी हूँ।"

ठाकुर साहब ने उसके चेहरे की ओर देखते हुए पूछा 'क्यों शोभा ! एक मजदूरनी से काम नहीं चलेगा ?'

शोभा प्रश्न को नहीं समझ सकी। उसने पूछा, "क्यों होगी मजदूरनी ?"

"मजदूरनी रखने से शकर की माँ को रसोई करने से फुरसत मिल जायेगी और वह ऊपर का काम कर लेगी। तुम्हारा शरीर भी व्याधिग्रस्त है, तुम्हें भी आराम मिल जायेगा !" ठाकुर साहब ने उत्तर दिया।

"अच्छा, समझ गई ! तुम एक नहीं, दस मजदूरनी रख लो ! किन्तु मैं तो गरीब घर की बेटी हूँ। मेरे लिए मजदूरनी की जरूरत नहीं। तुम्हारी लाडली बहन तो दो दिन में ही खाना पकाने से थक गई। इसलिए तुमको जरूर मजदूरनी रखनी चाहिए। शकर की माँ को मैं अभी अलग कर देती हूँ।" शोभा ने क्रूर हँसी हँसते हुए कहा।

ठाकुर साहब तनिक मुस्करा पडे ओर इसी वक्त बाहर से सुमन ने आवाज दी, "सब ठडा हुआ जा रहा है, भैया ! आओ न !"

ठाकुर साहब ने झटके-से उठते हुए बडे धैर्य से कहा, "चलो सुमन, मेरा काम भी समाप्त हो गया।"

दूसरा परिच्छेद

इस कुटुम्ब की परम्परा और इतिहास का वर्णन कर देना अनुचित नहीं होगा। ठाकुर उमरावसिह पन्द्रह वर्ष की आयु तक एक समृद्धिशाली पिता के पुत्र थे। उनके पिता के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध थी कि उनके समय में गरीब और धनी - सभी चैन की बशी बजाते थे। उनकी आमदन भी पर्याप्त थी। ठाकुर उमरावसिह ने पन्द्रह वर्ष तक खूब मौज उडाई और ऐशो-आराम किया, लेकिन जब से विमाता का पदार्पण हुआ, तब से दुर्दिन आ पडे।

ठाकुर साहब के पितामह बिहारीसिह ने प्रथम भार्या की मृत्यु के पश्चात् एक पुत्र शकरसिह होते हुए भी कचन और कामिनी के मायाजाल में फँसकर दूसरी शादी कर ली। तत्पश्चात् ही उन्हें राजयक्ष्मा हो गया और वे अपनी द्वितीय पत्नी के साथ चिकित्सार्थ बाहर घूमने लगे। धन-सम्पत्ति का क्षय कर दिया, लेकिन कुछ ही समय पश्चात् एक पुत्र को जन्म देकर वह भी ससार से चल बसी। अब ठाकुर साहब के पत्नी-वियोग ओर क्षय - दो रोग लग गये थे। उन्होंने अपने साले को बुलवाया और अपनी सारी विरासत दूसरी पत्नी से उत्पन्न पुत्र पद्मसिह के नाम कर दी। प्रथम पत्नी से उत्पन्न शकरसिह के नाम केवल इटावा की सम्पत्ति की गई। तत्पश्चात् वे भी गोलोक को सिधारे। वसीयतनामे में ठाकुर बिहारीसिह ने अपने साले अमरसिह का नाम अपने नाबालिग पुत्र पद्मसिह के सरक्षण के लिए दे दिया था।

अपने पिता की अत्येष्टि के बाद शकरसिह ने सम्पत्ति पर अधिकार पाने के लिए अपने भाई को घर लाना चाहा किन्तु सब उपाय निष्फल सिद्ध हुए। एकबारगी उसने यह भी सुना कि उसके भाई की मृत्यु हो चुकी है, परन्तु इसको प्रमाणित करने में भी विफल रहा।

इस प्रकार समय बीतता गया। एक बार उन्होंने किसी वकील से यह मालूम किया कि उसकी सम्पत्ति उसके पिता का साला दबाये बैठा है। वह मुकद्दमेबाजी से डरता था, लेकिन सम्बन्धियों के अत्यधिक आग्रह के कारण मुकद्दमा करने के लिए विवश हुआ।

लेकिन शकरसिह के पास नगदराम नहीं थे। बस यही मुकद्दमा लडने के प्राण थे। करते

तो क्या करते ? उनकी गाठ खाली हो चुकी थी। अत सुप्रीम कोर्ट में मुकद्दमा हार जाने के पश्चात् सारी सम्पत्ति भाई के मामा को सुपुर्द कर दी गई। कुछ समय पश्चात् उसे मालूम भी पड गया कि उसके भाई की मृत्यु हो चुकी है और अमरसिह ने अपने पुत्र को ही पद्मसिह बना रखा है।

अपने बहनोई की मृत्यु के उपरान्त भी उसने कोई कार्यवाही नहीं की। यह रहस्यमय घटना प्रकट होते ही शकरसिह ने एक प्रमाण पर प्रीवी कौंसिल में अपील करने की तैयारी की। परन्तु प्रीवी कौंसिल का निर्णय मालूम होने से पहले ही निर्धनता से आक्रान्त शकरसिह इस ससार से चल बसे ! किन्तु, उन्होंने स्वर्गयात्रा से पहले ही अपने गाँव को गिरवी रखकर अपने पुत्र व पुत्रिका का विवाह कर दिया था।

सुमन उनकी विमाता की पुत्री थी। उसके जन्म के अवसर पर ठाकुर उमराबसिह की आयु लगभग १८ साल की रही होगी। अब सुमन तरुणी हो चुकी है। इटावा गाँव भी कोई छोटा गाँव नहीं है। ठाकुर उमरावसिह ने येन-केन-प्रकारेण अपने गाँव को छुडा लिया और अपनी आमदनी से एक कारिन्दे और सन्तरी को रख लिया था। शकरसिह ने आपत्तियाँ झेलकर भी अपने पुत्र को सुशिक्षित बनाया। अत ठाकुर उमरावसिह में अपने पिता के सारे गुण विद्यमान थे। बस, यहीं से हमारी वार्ता यानी कहानी प्रारम्भ होती है।

उस दिन शकर की माँ के सम्बन्ध में जो घटना घटी थी, उसके पीछे भी एक इतिहास निहित है। उस दिन जब सुमन भोजन पका रही थी, तो अभ्यास न होने के कारण खौलते हुए तेल से उसका हाथ जल गया। ठाकुर साहब से अपनी बहिन की यह हालत नहीं देखी गई और इसीलिए उन्होंने शकर की माँ को खाना बनाने का काम सौंप दिया और अपनी भार्या की सेवार्थ एक नौकरानी भी नियुक्त कर दी।

सुमन ने अपने भतीजे की हाफ-पेंट की मरम्मत की और इसके पश्चात् उसका अगरखा ठीक कर ही रही थी कि बाहर से ठाकुर साहब की आवाज आई, "सुमन !"

"हाँ, भैया ! आओ !" सुमन ने विनीत स्वर में उत्तर दिया।

ठाकुर साहब के कमरे में आते ही उसने अपने भाई के मुँह की तरफ ताकते हुए कहा, "मैं आज काम में इतनी लीन हो गई कि आपका रास्ता भी भूल गई। तनिक ठहरो भैया, अभी आई !" यह कहती हुई सुमन तरुण के कपडे अन्दर रखती हुई बाहर चली गई।

चन्द ही समय में चाय की केतली लिए हुए वहाँ पहुँच गई। एक प्याला अपने भाई को दिया और एक प्याला भरकर शकर की माँ के साथ अपनी भाभी को भेज दिया। चाय का स्वाद लेते हुए, अपने भाई का चेहरा देखते हुए पूछा, ' क्या हो गया, भैया ?"

ठाकुर साहब ने एक घूँट चाय की ली और उत्तर दिया "पता नहीं सुमन आज

क्या हो गया है। चित्त बडा अशान्त मालूम पडता है। थोडी देर गीता का भी अध्ययन किया लेकिन कोई सान्त्वना नहीं मिली, बहिन !"

सुमन अपने भाई की इस प्रकार की मन स्थिति देखकर तुरन्त ताड गई कि क्या वार्ता घट रही है ? इसके पूर्व भी, कई बार वह अपने भाई की अन्तरात्मा को परख चुकी थी। लेकिन हर बार ही उसे निर्धनता ही कारण मिला था। पर इस समय कोई अन्य कारण ही प्रतीत होता था। अत उसकी यह धारणा गलत निकली। बहुत समय के विचार के पश्चात् भी वह इस बात का पता न लगा सकी तो उसने पूछा, "क्यों भैया ! आज क्या कारण है, बताओ न। मैं नहीं समझ सकी।"

ठाकुर साहब चिन्ताग्रस्त थे। उस दिन शकर की माँ की जगह बदलने के पश्चात् जो घटना घटी, तत्पश्चात् भोजनोपरान्त ठाकुर साहब अपनी पत्नी के कमरे में उसे समझाने-बुझाने के लिए गये। लेकिन शोभा ने सुमन के प्रति जो विषवमन किया उससे ठाकुर साहब की अन्तरात्मा उद्वेलित हो गई। बहुत-कुछ प्रयत्न करने के बाद भी शान्ति न हुई। शोभा ने ठाकुर साहब से कहा था, "अठारह वर्ष की अपनी तरुणी बहिन को घर में रखते तुम्हें शर्म नहीं आती? शकर की माँ से पूछो तो गाँव में क्या चर्चा हो रही है ? वह तुम्हें बतला देगी।" इसके बाद भी जो-कुछ उसने कहा वह सारा ठाकुर साहब के हृदय को तीर की भाँति बींध कर चला गया और वे गम्भीर मुद्रा में सोचने लगे कि किस प्रकार से सुमन का विवाह किया जाय।

सुमन ने भाई से कोई उत्तर न मिलने पर उनके चिन्तित चेहरे को देखते हुए कहा, "भैया ! सच बताते क्यों नहीं ? क्या हो गया है आपको ?"

न जाने एक साथ ही ठाकुर साहब कैसे उत्साहित हो गये ? वे बोल उठे, "सुमन! बतलाओ तो सही, क्या स्त्री के लिए विवाह करना अनिवार्य है ?"

"किसी धार्मिक पुस्तक में तो नहीं लिखा है भैया ! यदि किसी शास्त्र-प्रणेता ने लिख भी दिया है तो वह निरा मिथ्यावादी, जनघातक और अफण्डी है। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि कोई भी शास्त्रज्ञ नारी के हृदय की गहराई को नहीं नाप सका है।" सुमन ने तपाक-से उत्तर दिया।

"अच्छा शास्त्रों को रहन दो। जब शास्त्रों को पकडने की सामर्थ्य ही नहीं है तो बात करना भी फिजूल है। किन्तु गाँव के लोग जो बात कर रहे हैं, उसकी विस्तृत व्याख्या तुम्हारी भाभी ने कर दी है। कौन कह सकता है कि किसका कहना ठीक है और किसका गलत ? इसकी चिन्ता छोड देने पर भी क्या करना अच्छा होगा और क्या बुरा, यही चिन्ता आज मुझे सताती है।'

आप फिजूल की चिन्ता में इतने परेशान क्यों होते हो भैया ? भगवान ने सबको

जीभ दी है, जो जिसके मन में आये सो कह लें। जब भगवान रामचन्द्र सरीखे भी अवतार धारण कर दूसरों की जीभ पर नियत्रण नहीं रख सके तो साधारण मनुष्य की तो सामर्थ्य ही क्या ? व्यर्थ ही में चिन्ता करना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। यदि मैं पुरुष होती तो " कहते-कहते सुमन की आँखें डबडबा गईं।

ठाकुर साहब को दु खित करने के लिए इतना ही काफी था। वे स्नेहयुक्त शब्दों में बोल पडे, "सुमन !" स्वर में स्नेह के साथ कठोरता भी प्रतीत होती थी।

सुमन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "कुछ नहीं कहूँगी, भैया ! जो चाहो सो कर सकते हो।" कहती हुई भाई के पैरों पर शॉल ढकने लगी क्योंकि सर्दी पड रही थी। वह फिर से बोल उठी, "अब भी क्रोध शान्त नहीं हुआ भैया ! आप कितने कठोर हो ?"

बस, इतना ही काफी था। उसी क्षण ठाकुर साहब के चेहरे की सारी कठोरता विलीन हो गई और शान्ति छा गई। फिर सुमन ने कहा, "इसीलिए तो विज्ञ लोग कहा करते हैं कि मनुष्य में सहिष्णुता का होना परमावश्यक है। कारण कि अपने मत से दूसरे का मत न मिलने पर भेदभाव का श्रीगणेश हो जाता है। आगे चलकर यही मतान्तर में परिणत हो जाता है। इसका परिणाम क्या होता है, सो किसी से छिपा नहीं। क्यों भैया, है न ?"

ठाकुर साहब ने उत्तर दिया, "मैं तो इसमें रजामन्दी देने में कोई आपत्ति नहीं देखता, सुमन ! किन्तु इस प्रकार का उपद्रव शान्त करने का सामर्थ्य हम लोगों में से किसमें है ? जब स्वय भगवान भी इससे नहीं बचे तो इसकी उपेक्षा करना भी मैं पाप समझता हूँ। इसके पक्ष में प्रमाणों की कोई कमी नहीं है, सुमन। क्यों ?"

सुमन ने उत्तर दिया, "पाप क्या है भैया ? जहाँ कारण प्रचुर मात्रा में हैं वहीं तो मनुष्य की जबान से निकली हुई बात की उपेक्षा करना अनिवार्य है। वहाँ पर ऐसा न करना अपराध समझा जाता है। किन्तु मैं अभी तक निर्णय नहीं कर सकी कि मानव के इन भावों को किस सज्ञा से सम्बोधित किया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि जो पाप-प्रवृत्ति है, उसकी कल्पना तक करना मेरे सामर्थ्य से बाहर है, भैया ! पर इसकी उपेक्षा भी तो करना पाप है।"

ठाकुर साहब का चेहरा सुमन के इस उत्तर से प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने कहा, "तुम ठीक कहती हो सुमन ! मनुष्य की यही प्रवृत्ति, जिसके कारण मनुष्य मनुष्य का जानी दुश्मन बन बैठा है, महापाप है - भीषण अपराध है। लेकिन सुमन ! जो प्रवृत्ति आदिकाल से मानव को पैतृक सम्पत्ति के रूप में आज तक मिलती आई है, उसको तिलाजलि देने के लिए लोगों को अब तक सुशिक्षा नहीं मिली है और जब इस प्रवृत्ति की इतिश्री करने वाले गरदन ऊँची उठाते हैं तो हम उच्च स्वर से गरज उठते हैं कि पचों की बात नहीं मानने वाला घोर पातकी है। अत " ठाकुर साहब ने अपनी बात समाप्त करने से पहले ही सुमन के चेहरे की ओर

देखा। वे चाहते थे कि जो तर्क उन्होंने अभी रखा है, उसके खण्ड-खण्ड करके सुमन उनके सामने फेंक दे।

सुमन ने शान्त और विनीत स्वर में कहना प्रारम्भ किया, "भाभी ने जो-कुछ सुना है, वह आपके सामने रख दिया। उसको आप अस्वीकार नहीं कर सके। वह क्या है, मैं नहीं जानती। जब मैंने नारी जन्म हिन्दू समाज में लिया है तो असख्य आपत्तियाँ झेलने के पश्चात् भी पाणिग्रहण तो करना ही होगा।" सुमन ने तनिक रुककर फिर कहा, "आपने मेरा लालन-पालन किया। आपने मुझे जो शिक्षा दी है, उससे क्या लाभ है और क्या हानि है, यह मैं भलीभाँति समझ सकती हूँ। मैं गर्वित-मस्तक होकर कहती हूँ कि भैया ! आपके सुख के लिए मैं प्राण तक न्यौछावर कर सकती हूँ। पर, इतना मैं स्पष्ट कह देती हूँ कि जिस कार्य से आपको शन्ति न्हीं मिलती, चाहे भले ही मैं जीवनपर्यन्त अविवाहित रहूँ, वह कार्य नहीं कर सकती। ओर आप भी मुझे उससे विचलित नहीं कर सकते ! अभी मत उठो भैया ! मेरी बात तो अभी तक समाप्त भी नहीं हुई है।"

इसी समय शोभा तरुण की नींद खुल जाने पर सुलाने का प्रयत्न कर रही थी, किन्तु वह जबरदस्ती वहाँ से उठकर भाग आया और अपनी बुआ की गोद में बैठ गया। तरुण के लिए माँ से बुआ अधिक प्रिय थी। वह अपनी पोशाक पहनने का प्रयत्न करने लगा। शोभा की समझने की शक्ति से यह बाहर था कि इस प्रकार से नन्हे-नन्हे शिशुओं में भी दैवी शक्तियाँ और प्रवृत्तियाँ काम किया करती हैं।

पोशाक पहनते हुए तरुण ने कहा, "बाबू ! टहलने के लिए चलो।"

"जाओ भैया ! आप भी जरा घूम आओ। आपकी तबीयत भी ठीक हो जायेगी !" सुमन ने तरुण की बात का समर्थन करते हुए कहा।

"पर तुम्हारी बात तो अभी तक समाप्त भी नहीं हुई है।" ठाकुर साहब ने कहा।

' वह अभी समाप्त होने वाली नहीं ! मैं शाम को सुनाऊँगी।" सुमन ने कहा।

ठाकुर साहब पुत्र को साथ लेकर घूमने को चले गये। सुमन ने अनुभव किया कि कितना व्यथित हृदय लेकर उसके भाई विवाह की बात चलाने के लिए आये थे ! अभागिनी मातृ-पितृहीना सुमन के लिए उमरावसिंह ही एकमात्र आश्रय थे।

❑ ❑ ❑

रात्रि काफी बीत चुकी थी, फिर भी ठाकुर साहब घर वापिस नहीं लौटे थे। सुमन ने उकसाते हुए दिल से बाहर की ओर झाँका तो देखती है कि ठाकुर साहब के अलावा कोई नहीं है। उन्होंने दरवाजा थपथपाया और अन्दर आ गये।

उन्होंने आते ही सुमन के हाथ में एक तार का लिफाफा दिया। सुमन ने तार पढकर कहा, "वीरेन्द्रसिह वही न, जो ब्रह्मचारी सघ के सदस्य हैं ?" और वह मुस्कराती हुई भाई की ओर देखने लगी।

ठाकुर साहब ने जरा लज्जित स्वर में कहा, "मैं भी तो किसी समय ब्रह्मचारी सघ का सदस्य था। किन्तु वह तो आज भी है, यह विश्वास अब किस प्रकार किया जाय ? चाहे जो-कुछ भी हो, वीरेन्द्रसिह मुझे अब भी नहीं भूला है। किन्तु मेरा विचार है कि ?"

सुमन ने मध्य में ही उनकी बात काट दी और कहा, "नहीं भैया ! आपको ऐसा नहीं विचार करना चाहिए। उनके जैसे धनाढ्य को यहाँ भले ही कष्ट हो, किन्तु वे इसको विचार में लायेंगे, ऐसा मैं नहीं समझती, पर वे तो कल ही आ रहे हैं। अच्छा, अब चलो आपका सध्या-वदन का समय हो चुका है।"

भाई और बहन दोनों उठे और वहाँ से चल दिये।

□□□

तीसरा परिच्छेद

रात्रि के समय भोजनोपरान्त ठाकुर उमरावसिह जब अपने शयनागार में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि दोपहर का विद्रोही वातावरण अभी तक शान्त नहीं होने पाया है। उनका पुत्र तरुण तो अपनी बुआ के पास सो चुका था। उनकी धर्मपत्नी शोभा सोने का ढोंग रच रही थी, किन्तु उसके चेहरे से ऐसा झलक रहा था कि अब भी वह किसी षड्यन्त्र का निर्माण कर रही थी।

यद्यपि ठाकुर साहब अपनी पत्नी से बात करने के लिए लालायित नहीं थे, फिर भी वीरेन्द्रसिह के आने का समाचार सुनाना आवश्यक था, अत उन्होंने पुकारा, "शोभा !"

"क्या है ?" साँप की तरह फुफकार मारती हुई शोभा बोली।

"तुम्हें वीरेन्द्रसिह की याद है न ?" कहकर ठाकुर साहब ने उत्तर की प्रतीक्षा की। किन्तु जब कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने स्वय ही कहना प्रारम्भ किया, "वही, जिसने हमारे विवाह के अवसर पर तुम्हें एक कीमती अगूठी भेंट की थी और मुझे भैया कहकर के पुकारा था।'

यद्यपि शोभा को सब-कुछ याद था, फिर भी अपना मुँह बनाते हुए कहा, ' क्या हो गया है, उन्हें ?"

"आज उसका तार आया है जिसमें लिखा है कि वह एक सप्ताह हमारे यहाँ रहेगा। आजकल तो वह एक बडा सर्जन हो गया है। यहाँ आने पर सम्भवत तुम्हारे स्वास्थ्य को भी ठीक कर देगा।

तमतमाती हुई शोभा ने कहा 'मेरे स्वास्थ्य की एक तो तुम देखरेख करते हो और अब वह भी आ जायेंगे। मेरे स्वास्थ्य की देखरेख की कोई आवश्यकता नहीं। अब मैं बचूँगी नहीं ।

' वीरेन्द्र तुम्हारी उपेक्षा कभी नहीं कर सकता । मैं यह भलीभाँति जानता हूँ।"

"तुम्हारे हृदय की बात तुम ही जानते हो या तुम्हारी प्यारी वहन जानती है। भला मैं क्यों जानूँ ?" शोभा ने एक बार फिर फुफकार करके कहा।

ठाकुर साहब के हृदय में ये वचन तीर की भाँति लगे। फिर भी उन्होंने शान्तचित्त से उत्तर दिया, "न जाने क्यों उस अनाथा के पीछे तुम पडी हो ? कुछ भी हो, यह हिसा-भावना अच्छी नहीं है।"

"हूँ, हिसा भावना ।"

ठाकुर साहब जरा मुस्करा पडे। उन्होंने कहा, "यदि तुम इससे सहमत नहीं हो तो इससे हर्ष की बात और क्या हो सकती है। किन्तु, शोभा तुम तनिक सहिष्णु बनना सीखो, इससे शान्ति मिलेगी। मन को इतन कटु मत रखो - इससे सुख मिलेगा। ससार में सहिष्णु व्यक्ति ही सुखी और स्वस्थ होता है।"

शोभा ने चीख मारी। आज मध्याह्न से ही उसके पतिदेव उसको अपमानित कर रहे हैं। वह अपने पति का प्रेम पाने में असफल रही है, इससे ऐसा प्रतीत होता है। वह पति के प्रेम की एकमात्र अधिकारिणी बनना चाहती है। किन्तु न जाने, सुमन बीच में क्यों टपक पडी। वह जानना चाहती है कि उसके पति उसको सन्देह की दृष्टि से क्यों देखते हैं ? आज उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि उसमें हिसा की भावना है। इन सब बातों को सुनने से तो मृत्यु भली है। शोभा ने रोते-रोते कहा, "देखो, मैं आपके अपमानपूर्ण व्यवहार से तग आ चुकी हूँ। अब मैं ज्यादा सहन नहीं कर सकती। यदि मैं आपकी आँखों का काँटा हूँ, तो मुझे अपने मायके भेज दो। जिस माँ ने मुझे पेट में भी आश्रय दे दिया तो शान्ति से रहने के लिए भी पाँच गज जगह अवश्य दे देगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।" शोभा का आर्त स्वर और भी भीषण हो गया।

ठाकुर साहब को इस प्रकार की बातें सुनने का पहले भी अवसर मिल चुका था। अत वे उनसे अनभिज्ञ नहीं थे। वे अपनी पत्नी के हृदय-तल की गहराई नाप चुके थे। उन्होंने कहा, "शोभा ! इस प्रकार से तुम मुझे दण्डित क्यों कर रही हो ?"

शोभा झटका मारकर पलग पर से उठ खडी हुई और पति के पैरों पर नतमस्तक होकर बोली "मेरी सौगध खाओ कि फिर आप कभी भी ऐसी बात न कहोगे।" और झट से पति का एक हाथ पकडकर अपने मस्तक पर रख लिया।

तनिक मौन धरने के पश्चात् ठाकुर साहब बोले, "तुम भी मेरे मस्तक का स्पर्श करके यह दुहाई लो कि तेरे हृदय को दुखाने वाली बात तुम कभी नहीं कहोगी।"

शोभा उठ खडी हुई। उसने कहा ' मैंने कभी भी आपका दिल दुखाने का प्रयत्न नहीं किया। यदि कभी भूल से कर भी दिया तो इच्छित दण्ड दे सकते हो।"

"खैर ! मैं अब कभी कटुवचन नहीं कहूँगा। हाँ, कल वीरेन्द्रसिंह आने वाला है, उसके स्वागतार्थ हमें प्रबन्ध करना चाहिए।"

अब शोभा पलग से उतरकर पतिदेव के पास आ बैठी थी। उसने प्रश्न किया, "वीरेन्द्रसिंह का विवाह हो चुका है ?"

"यदि न हुआ है तो उसका भी प्रबन्ध कर दिया जायेगा, इसमें कोई विशेष बात नहीं है। क्यों ?"

"नहीं, मैंने तो यों ही पूछ लिया था। किन्तु मैं तो बीमार ठहरी। किस प्रकार से उनके स्वागत का प्रबन्ध होगा ?"

"तब क्या किया जाय ?" ठाकुर साहब का स्वर चितापूर्ण था।

"क्यों, सुमन नहीं कर सकती ?"

"हाँ, उसके सिवाय दूसरा कौन है ? मैं सुमन से ही अनुरोध करूँगा। वीरेन्द्र को मेरे सिवाय और कौन अधिक जानता है !" यह कहकर ठाकुर साहब मन्द-मन्द गति से मुस्कराने लगे।

"यदि विवाह हो भी गया है तो वीरेन्द्र बाबू सपरिवार आयेंगे ?" शोभा ने पूछा।

"असम्भव कुछ नहीं है। अच्छा, अब तुम लेट जाओ। रात्रि में देर तक जागरण करने से तुम्हारी तबीयत और बिगड जाएगी।" फिर कपडे बदलते हुए ठाकुर साहब ने कहा, "ज्वर मेरे इतना पीछे पडा है कि छोडता नहीं। क्यों, शोभा ?" और फिर हँसने लगे।

शोभा को कुछ भय-सा लगा। उसने अपने हाथ का स्पर्श करके पतिदेव के तापक्रम को देखते हुए कहा, "आपने कभी अपनी तो चिन्ता की ही नहीं। यही आपके रोग का सबसे बडा कारण है। ईश्वर ने मुझे रुग्ण बना दिया है, जिससे मैं कुछ नहीं कर सकती। खैर, अब सो जाइये। कल वीरेन्द्र बाबू के आगमन पर सर्वप्रथम मैं आपके स्वास्थ्य के निरीक्षण के लिए कहूँगी।"

❑ ❑ ❑

दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्त में ही ठाकुर साहब ने त्रिपुण्डधारी को बुलावा भेज दिया।

बेचारा त्रिपुण्डधारी इतनी जल्दी की बुलाहट पाकर घबडाता हुआ दौडकर आया और नतमस्तक होकर ठाकुर साहब की सेवा में उपस्थित हुआ।

"क्यों त्रिपुण्डधारी ! कानपुर से आने वाली गाडी यहाँ कब पहुँचती है ?" ठाकुर साहब ने पूछा।

सरकार ! सात बजकर पैंतीस मिनट पर। '

"अच्छा, सुनो ! इस गाडी से मेरे एक अत्यधिक घनिष्ठ मित्र वीरेन्द्रसिंह आने वाले हैं। तुम सतरी को साथ लेकर स्टेशन पर उपयुक्त समय पर पहुँच जाना और किसी बढ़िया कार को किराये पर लेकर उनको ले आना। समझे !"

"जी, हुजूर !"

"अच्छा, अब तुम जा सकते हो।" यह कहकर ठाकुर साहब अपने घर में प्रवेश करने लगे कि त्रिपुण्डधारी ने फिर पुकारा, "हुजूर !"

"क्यों ? क्या है रे त्रिपुण्डधारी ?"

"सरकार, कागजात पर हस्ताक्षर कराने किस समय आऊँ ?"

"संध्या के समय। मैं अभी जरूरी कार्यों में व्यस्त हूँ।" अन्दर जाकर ठाकुर साहब ने पुकारा, "सुमन !"

"आओ भैया ! मैं चाय बना रही हूँ।" यह कहते हुए सुमन ठाकुर साहब के बैठने के लिए कुर्सी और मेज साफ करने लगी और नम्रता से बोली, "मैं भलीभाँति जानती थी कि आप आज पौ फटते ही उठ जाओगे। बैठो, अभी वीरेन्द्रबाबू के आने में काफी देर है।"

"मुझे एक विशेष आग्रह करना है, सुमन। मेरा पूर्ण विश्वास है कि तुम उसे अमान्य नहीं करोगी।" कहते हुए ठाकुर साहब कुर्सी पर आराम से बैठ गये।

"आखिर मैंने कौनसी त्रुटि कर दी है भैया, जो आप आज इस तरह की बात कर रहे हो। आप आज्ञा दो भैया।" कहकर सुमन अपने भाई का मुँह ताकने लगी। फिर उसने कहा, "अच्छा, आप चाय का पान करो, मैं अभी आ रही हूँ।" कहते हुए सुमन न जाने किस कार्य के लिए बाहर चली गई।

चौथा परिच्छेद

कुछ ही समय पश्चात् जब सुमन लौट आई तो ठाकुर साहब ने उससे पूछा, "तो, वीरेन्द्र बाबू याद ही हैं न, सुमन ?"

सुमन ने उत्तर दिया, "उन्हें कोई आसानी से भूल सकता है भैया ?" उसका मुख साधारण मुस्कराहट से सुशोभित हो रहा था।

"मैं तो इसीलिए उसे प्यार करता हूँ कि उसका हृदय गगा की तरह निर्मल है। कल यही बात मैंने तुम्हारी भाभी से कही थी। परन्तु उसकी तबीयत इतनी खराब है कि मैं उसे कुछ भी समझा नहीं सका।"

"क्या नहीं समझा सके, भैया ?" जब सुमन की समझ में कुछ नहीं आया तो उसने पूछा।

"वही तो बता रहा हूँ। वीरेन्द्र मेरे छोटे भाई के सदृश है। मैं उसकी देखरेख का भार तुम्हारी भाभी के कधों पर डालना चाहता था। परन्तु, उसने बीमारी के कारण अपनी लाचारी प्रगट कर दी है। इसलिए मैं तुम्हें यह भार ग्रहण करने के लिए कहता हूँ। क्यों कर सकती हो न, सुमन ?'

' मैंने कब आपकी आज्ञा का उल्लघन किया है, भैया ? मुझ से जितना हो सकेगा, मैं करने के लिए तैयार हूँ। उनकी सुविधा-असुविधा का मैं पूरा ध्यान रखूँगी।" अबोध की तरह सुमन न जवाब दिया। फिर एक प्याली चाय और भर के भाई को दे दी। बहुत देर तक ठाकुर साहब को मौन देखकर सुमन ने फिर बात छेडी 'उस समय तो वे मुझ से बहुत बडे थे इसलिए मैं लडाई में हार जाती थी। लेकिन अब ।

'उसके शरीर में जितनी अधिक ताकत है उतनी ही असाधारण (तीव्र) उसकी बुद्धि है। सभी परीक्षाओं में वह हमेशा प्रथम रहा है और उसका स्वास्थ्य तो इतना अच्छा है कि देखने

पर डाह होती है। उसे सरस्वती और लक्ष्मी दोनों का वरदान प्राप्त है।" ठाकुर साहब ने कहा।

इस प्रकार दोनों में बातें चालू थीं कि ठाकुर साहब को अचानक कुछ याद आया और वे, "अच्छा जरा देखूँ, त्रिपुण्डधारी स्टेशन गया या नहीं।" कहकर बाहर चले गये।

त्रिपुण्डधारी समय का बडा पाबन्द था। वह बहुत देर पहले ही स्टेशन पहुँच गया था और उसके साथ सतरी भी था। गाडी तो समय पर ही आई। त्रिपुण्डधारी का विचार था कि इतने बडे घराने का लडका सिवा फर्स्ट क्लास के और किसी भी डिब्बे में यात्रा नहीं कर सकता। इसलिए दोनों ने वीरेन्द्र को उसी डिब्बे (फर्स्ट क्लास) में देखा। पर, जब वह मिला ही नहीं तो दोनों हताश होकर लौटे।

इधर एक सूटकेस हाथ में लिए वीरेन्द्र बाबू थर्ड क्लास डिब्बे से उतरे और स्टेशन पर किसी को नहीं देखकर सोचने लगे, "कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि मेरा तार उमरावसिह को मिला ही न हो।"

चारों ओर दृष्टि डालने पर भी जब उसे कोई दिखाई नहीं दिया तो उसने निश्चित कर लिया कि उसे लेने कोई नहीं आया है तो उसका सन्देह पक्का हो गया और अकेले ही ठाकुर साहब के घर की तरफ पैर बढाये। रास्ते में प्लेटफार्म पर ही उसे गेटमैन मिला। वह अपने कार्य में इतना सलग्न था कि वीरेन्द्र बाबू के पूछने पर भी कि "इटावा का रास्ता कौनसा है ?" उसने इशारे से एक टूटी-फूटी सडक की ओर दिखा दिया।

कुछ ही दूर चल पाया था कि उसे रास्ते में चमारों का एक लडका मिला। सूटकेस लेकर वीरेन्द्र का पैदल चलना कठिन हो रहा था, इसलिए उसने पूछा, "क्यों भाई, इटावा के जमींदार उमरावसिह का मकान तुम जानते हो ?"

"हाँ, यहाँ से कोई दो-एक मील होगा।"

"जरा मुये वहाँ पहुँचा दो न, यह सूटकेस भी ले लो, मैं तुम्हें पैसे दूँगा।"

"कितने पैसे ?"

"तुम जो माँगो।"

"मैं तो दो रुपये लूँगा।"

"अच्छा, चलो दूँगा।" कहकर वीरेन्द्र ने सूटकेस उस लडके के सिर पर रख दिया और उसके पीछे-पीछे चलने लगा। यों तो वह कॉलिज की पढाई के दिनों में और उसके बाद ठाकुर साहब के विवाह के शुभावसर पर, कुल मिलाकर दो बार इटावा आ चुका था, पर उसे रास्ता याद नहीं रहा। यह अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता।

इधर ठाकुर साहब और सुमन दोनों उत्साहपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। थोडी देर बाद

त्रिपुण्डधारी को आते देखकर सुमन ने कहा, "भैया ! यह लो, त्रिपुण्डधारी आ गया।"

पर, वह सन्तरी के साथ अकेला ही था। उसने आकर बताया कि वह पूरी गाडी खोज आया, पर कोई कहीं नहीं मिला।

उसी क्षण सुमन ने देखा कि चमारों के लडके के सिर पर सूटकेस रखे उसके पीछे वीरेन्द्रबाबू आ रहे हैं।

उसने आते ही ठाकुर साहब को प्रणाम किया। सुमन दरवाजे के पीछे छिपी खडी थी। वीरेन्द्र ने कहा, "हाँ, भैया ! मैंने देखा था इन लोगों को फर्स्ट क्लास के डिब्बे में किसी को ढूढते। पर, मुझे क्या मालूम कि ये लोग मुझे ही ढूँढ रहे हैं और न ही ये लोग जानते थे कि मैं थर्ड क्लास में भी यात्रा कर सकता हूँ।" और इसके उपरान्त उसने जोर से हँसते हुए पाँच रुपये का एक नोट निकालकर सन्तरी के हाथ में रख दिया और कहा, "मुझे ढूँढने में तुमने जो मेहनत की है, उसका इनाम।"

फिर दो रुपये देकर चमार के लडके को भी विदा किया। सुमन अभी तक दरवाजे की आड में ही खडी थी। ठाकुर साहब ने उसे पुकारा, "सुमन, चली आओ ! यहाँ हम दोनों के सिवा और कोई नहीं है।" और फिर त्रिपुण्डधारी और दरबान को जाने की आज्ञा दी।

सुमन ने बाहर आकर वीरेन्द्र को प्रणाम किया और मन्द मुस्कान से पूछा, "वीरेन्द्रबाबू, मुझे पहिचानते हैं ?"

युवती सुमन के असाधारण रूप को देखकर वीरेन्द्र क्षणभर के लिए अवाक् हो गया। फिर उसने अपने को सँभाला और उमरावसिह की ओर देखकर कहा, "देखो, भैया ! इसने मुझे गधा समझ लिया है। सोचती है कि रास्ता याद न रहा तो भैया की बहिन भी याद नहीं होगी। मैंने तो इसकी कल्पना तक नहीं की थी। खैर, बताइए, मैं आपको क्या कह कर सम्बोधित करूँ ?"

वीरेन्द्र ने अपनी बात इस प्रकार कही कि सुमन तो हँसी ही, उसके साथ ही उसके भैया भी, जो सदा गम्भीर रहा करते थे, वे भी ठहाका मारकर हँस पडे।

वीरेन्द्र ने फिर पूछा, "हाँ, तो बताइए !" पर, सुमन के कुछ कहने से पूर्व ही उमरावसिह बोल पडे, "वीरेन्द्र ! तुम उसे सुमन कहकर ही पुकारो। सुमन को इसी में सुख होगा।"

' नहीं भैया तुम जानते नहीं। क्या मैं इतना दुर्बल हूँ कि इस भार को वहन नहीं कर सकता ? फिर भी "

उसकी बात समाप्त होने के पूर्व ही उमरावसिह ने पूछा, क्यों जी, तुम आजकल भी ब्रह्मचारी सघ के सदस्य हो कि नहीं ?

"हूँ भैया ! पर उसके प्रति श्रद्धा बढी नहीं, यह चीज मुझे कभी सह्य नहीं हुई। इस कल्पना से ही कि कोई मेरे जैसे व्यक्ति के प्रति श्रद्धा प्रकट करता है तो मुझे अपने-आप पर ही अश्रद्धा होने लगती है।" फिर उसने सुमन की ओर देखकर कहा, "सम्भव है कि इस प्रकार का दुस्साहस मैं किसी दिन कर सकूँ कि आपका नाम लेकर पुकारूँ। पर इस समय क्या कहकर सम्बोधित करूँ, बताइए ?"

सुमन नतनयन थी और उसके चेहरे पर खुशी की रेखाएँ स्पष्ट झलक रही थीं। उसने कहा, "कुछ नहीं। आप यों ही नाम लेकर पुकारिये न !" और फिर ठाकुर साहब की ओर नजर डालकर कहा, "भैया, आप इनसे बातचीत कीजिए ! मैं अभी वीरेन्द्रबाबू के लिए चाय लेकर आती हूँ।" कहकर तेजी के साथ अन्दर चली गई।

उमरावसिह का हृदय आनन्द के घोडे पर सवार होकर नाच रहा था। उन्होंने वीरेन्द्र की ओर देखकर कहा, "वीरेन्द्र, तुम्हें पाकर मैं कितना हर्षित हूँ, यह तो मेरा हृदय ही जान सकता है। सुना है कि तुमने डॉक्टरी पास की है।"

"हाँ भैया ! परन्तु तुम्हारा स्वास्थ्य ऐसा क्यों है ? इसके कई कारण हो सकते हैं, यह तो मैं जानता हूँ। पर तीस का जवान पचास का लगे तो यह तो असह्य है। आखिर, तुम्हें हुआ क्या ?"

"अरे, कुछ होगा। तुम्हें स्वय ही एक-एक कर सब-कुछ मालूम पड जायेगा। पर, मेरा एक अनुरोध अस्वीकार तो न करोगे ? इतने समय के बाद तुमने मुझे याद किया और मेरे पास आये, अब कुछ ऐसा उपाय करो कि मैं जीवन के वास्तविक सुख का अनुभव कर सकूँ।" कहकर उमरावसिह मुस्कराने लगे।

वीरेन्द्र ने एक दीर्घ साँस लेकर कहा, "इस बारे में तुम निश्चित रहो, भैया ! डॉक्टर होते हुए भी मैं कभी तुम्हारे घाव में सुई चुभोकर गहराई का प्रयत्न न करूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पुष्प-कोमल हृदय के नीचे जो मन छिपा हुआ है, वह इतना दृढ है कि वज्र को भी चूर-चूर कर दे।"

ठाकुर साहब अपनी प्रसशा सुनने के तनिक भी इच्छुक नहीं थे। उन्होंने इसलिए बात बदलते हुए कहा, "तुम्हारे माता-पिता सब अच्छी तरह तो हैं वीरेन्द्र ?"

"हाँ, सब अच्छी तरह हैं। पर, सभी प्रकार से सुखी होते हुए भी वे वास्तव में सुखी नहीं।"

सुमन इतने में चाय और जलपान का सामान लेकर आ गई थी। उसने सब टेबल पर रख दिया और कहा, "आज पहली बार वीरेन्द्रबाबू के मुँह से सुना है कि सभी प्रकार का सुख होते हुए भी किसी को मन कष्ट सताया करता है।"

उमरावसिह ने कोई जवाब नहीं दिया। केवल मुस्करा पडे।

वीरेन्द्रसिह ने कहा, "मेरा अभिप्राय भैया ने समझा इसलिए उन्होंने प्रतिवाद नहीं किया। पर आपको समझाना ब्रह्मचारी सघ के इस पुराने मँजे हुए सदस्य के लिए भी कठिन है। अपनी बात अपने पिता को समझा लेने पर भी आज तक अपनी माँ को समझा नहीं सका। इसलिए, जहाँ अभाव है, वहाँ मन कष्ट होगा।"

सुमन ने हँसते हुए कहा, "मेरे न समझने पर बहुत बडी हानि न हो जायेगी। अच्छा, अब नाश्ता कीजिए। चाय ठण्डी हो रही है।"

वीरेन्द्र ने चुपचाप नाश्ते की चीजों के प्रति अपना न्यायपूर्ण व्यवहार प्रकट करते हुए कहा, "स्नान, पूजा आदि से सवेरे ही निवृत्त हो गया हूँ, भैया ! यद्यपि मैं लाख बुरा हूँ लेकिन तुम्हारे आशीर्वाद से इतना तो अवश्य है भैया, कि अगर मैं किसी को बिना स्नान-ध्यान-पूजा किये भोजन करते देख लेता हूँ तो सोचता हूँ, यह व्यक्ति केवल खाने के लिए ही जीवित है। जीवित रहने के लिए खाने वाले लोग दूसरे ही हैं।"

"पर, तुम्हारा खाना देखकर तो मैं ऐसा सोचने लगा हूँ वीरेन्द्र, कि तुम केवल खाने के लिए जीवित हो। मैं ही क्यों ? यदि किसी को भी तुम्हारे साथ दो-एक दिन रहने का अवसर प्राप्त हो जाय तो वह भी यही कहेगा, इसमें रत्तीमात्र भी सन्देह नहीं।" उमरावसिह ने मुस्कराते हुए कहा।

वीरेन्द्र ने सुमन की ओर देखते हुए कहा, "सुना आपने भैया का प्रमाणपत्र ! पर, आपको यह तो मालूम हो ही गया होगा, कि मैं कितना वेशर्म हूँ। मेरा यह विश्वास है कि लज्जा स्त्रियों का प्रमुख आभूषण है। पुरुषों से उसका सम्बन्ध नहीं।" और उसने चाय की प्याली होंठों से लगाते हुए फिर कहा, रसगुल्ला ओर समोसे बहुत हाईक्लास थे। ये फायदे की भी चीजें हैं। इसलिए ।"

सुमन ने बीच ही में बात काटते हुए कहा, "इसलिए मैं अभी एक क्षणभर में आई। आप जरा रुके रहिए।' और तेजी से अन्दर चली गई।

उमरावसिह ने वीरेन्द्र की ओर देखते हुए कहा, "तुम्हें सर्टिफिकेट देते ही तुमने अपनी शक्ति का परिचय दे दिया ! वीरेन्द्र, ससार में दाताओं की कमी नहीं है। पर, उनका दान ग्रहण करने की शक्ति कितने लोगों में है ?'

वीरेन्द्र ने हँसते हुए कहा बस करो, भैया ! रहने दो। नहीं तो मेरे जैसे भिखारियों का दर्शन ही दुर्लभ हो जायेगा।"

इतने में ही सुमन रसगुल्ले और समोसे लेकर प्रस्तुत हुई। उसकी ओर दृष्टिपात करते हुए वीरेन्द्र ने कहा, ' यह देखो ! और लेकर प्रस्तुत हो गई। पर अब खाने की शक्ति मुझमें

नहीं है। अगर ज्यादा खा लूँगा तो अभी थोडी देर में जो भोजन खाना है उसमें बहुत-सी चीजों का स्वाद भी न चख सकूँगा।"

"उसमें अभी काफी टाइम है।" सुमन ने हँसते हुए उत्तर दिया।

"खैर, भैया तो मेरे गुरु हैं। वे जानते हैं कि सामने आई हुई चीज मैं छोड नहीं सकता।" कहकर वीरेन्द्र खिलखिलाकर हँस पडा।

"हाँ, हाँ ! आप जिसे गुरु कहते हैं, जरा उनकी हालत तो देखिये, क्या हो रही है?" सुमन ने कहा।

उमरावसिह ने अपनी बहन की बात सुनी और एक दीर्घ साँस लेकर वीरेन्द्र ने कहा, 'आपकी समस्या पर फिर विचार करने का प्रयत्न करूँगा।"

इसके उपरान्त उसने उमरावसिह की ओर दृष्टिपात करके कहा, "अरे, भैया ! मैं तो बिल्कुल भूल गया था। भाभी के चरणकमल अभी तक नहीं छुए। वे यहाँ नहीं हैं क्या ?"

' हैं। चलो, अन्दर चलो।" उमरावसिह ने उत्तर दिया और सबके-सब अन्दर चल दिये।

पॉचवॉ परिच्छेद

उस समय शरद ऋतु का समय था और शीत का अवसान होने के पूर्व कडाके की सर्दी पड रही थी। वीरेन्द्रसिह के प्रयत्न करने पर भी ठाकुर उमरावसिह का ज्वर उनका पिड नहीं छोड रहा था। उस दिन दोपहर को ठाकुर साहब को ज्वर ने आ घेरा और वे कम्बल ओढे खाट पर इधर-उधर छटपटाने लगे। उनके पास वाले कमरे में वीरेन्द्रसिह, सुमन और शोभा - तीनों बैठे हुए थे। वीरेन्द्रसिह ने कहा, "अपने स्वास्थ्य की चिता न करना भी महा अपराध है और अन्य कामों के सम्बन्ध में व्यर्थ ही चिन्ता करना एक अपराध है। फिर भी तुम्हारे जैसे बुद्धिमान आदमी स्वास्थ्य के सामान्य नियमों का भी पालन न करें, यह कैसे सहन हो सकता है ?"

सुमन ने भाई के चेहरे की ओर ताकते हुए विनीत स्वर में कहा, "मैं बतलाऊँ, भैया जान-बूझकर इतनी बेपरवाही करते हैं। यदि किसी दिन तेज बुखार चढ भी जाता है तो जबरदस्ती ही डॉक्टर बुलाया जाता है। लेकिन दवाई तक लापरवाही के कारण नहीं खाते हैं और वह खरीदी हुई दवाई की शीशी अलमारी में पडी हुई प्रदर्शनी की शीशियों की सख्या बढा देती है। इसमें यदि एकमात्र अपराध है तो भैया का है।"

वीरेन्द्रसिह कुछ कहने का इच्छुक ही था, किन्तु ठाकुर साहब ने मध्य में ही चिडकरके कहा, "यदि तुम लोगों के कुछ काम नहीं है तो तनिक घूम आओ। व्यर्थ ही में मेरे से वाद-विवाद मत करो। '

' तुम्हारे से बहस करना हम बिल्कुल नहीं चाहते। किन्तु, तुम्हीं ने तो ऐसी परिस्थिति खडी कर ली है कि विवश होकर के हमें बहस करनी पडती है। ' वीरेन्द्र ने कहा और फिर सुमन की ओर मुँह फेर कर कहना शुरू किया देखो तो सही, कितने विस्मय की बात है कि जिस कारण से रुग्ण हुए हैं उसे स्वीकार करने में भी आनाकानी करते हैं।'

"इसके सम्बन्ध में आपको कहने की जरूरत नहीं, वीरेन्द्रबाबू ! खैर, अब अपने ब्रह्मचारी सघ के बारे में कुछ बातें करें।"

वीरेन्द्र ने मन्द-मन्द हँसी हँसते हुए कहा, "मैं भलीभाँति जानता हूँ कि भाभी के सामने मैं अपराधी हूँ। किन्तु, खैर, आप ब्रह्मचारी सघ की बातें सुनना चाहती हैं ?"

"हाँ, बताओ तो, मैं सुनना चाहती हूँ। इस समय आपके सघ के कितने सदस्य हैं?"

वीरेन्द्र ने फिर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा, "बस कुल इने-गिने दस सदस्य हैं, इससे अधिक नहीं।"

"बस कुल दस आदमी ही ?"

"हाँ, मैं बिल्कुल सही तो कह रहा हूँ। कारण इसका भैया जानते हैं। अगर आपके जानने की इच्छा है तो जान लीजिए। जैसे-तैसे प्रतिमास जितने नये सदस्य भर्ती होते हैं, उसी तरह हर मास में उसका दफ्तर परिवर्तित करना पडता है और इसी परिवर्तन के कारण पुराने सदस्य भी त्यागपत्र देते जाते हैं।"

"प्रतिमास दफ्तर के परिवर्तन का क्या कारण है ?"

"यही तो एक महान् समस्या है। भैया इससे भलीभाँति परिचित हैं।" वीरेन्द्र ने कहा-और लज्जित होकर के मुस्कराने लगा।

"होगा। किन्तु, भैया क्यों बताने लगे ? आप ही बतलाइए।"

"वास्तव में बात यह है कि जहाँ हमारा दफ्तर लगता है, वहीं नवकुमारियों की सस्था भी चली जाती है। ऐसी परिस्थिति में दोनों में सघर्ष होना स्वाभाविक ही है और उसमें यह भी निश्चित है कि हम हार खा जायें। बस, दफ्तर फिर परिवर्तित कर दिया जाता है। जो सदस्य इस तुलनात्मक सघर्ष में हार जाता है वह स्वत ही अलग हो जाता है। अत इसी कारण से प्रतिमास नये सदस्यों की भर्ती होने पर भी सदस्य सख्या ज्यों की त्यों बनी रहती है।

यद्यपि वीरेन्द्र ने यह बात बडी गम्भीरता के साथ व्यक्त की थी, लेकिन सुमन अपनी हँसी को न रोक सकी और अपनी गोद में बैठे हुए तरुण को नीचे उतारकर कहकहा मारकर बाहर चली गई।

वीरेन्द्र से यह बात गोपनीय न रह सकी और उसने ठाकुर साहब को सम्बोधित करके कहा, ' यह सत्य ही कहा है कि अप्रिय सत्य को नहीं बोलना चाहिए। सघ की दुर्बलता का भान कराके मैंने अच्छा कार्य नहीं किया, इससे आपको भी कष्ट हुआ होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

"तुम जैसे दृढ और सयमी पहले थे वैसे आज भी हो इसमें सन्देह की कोई बात

नहीं, यही मेरे लिए गर्व की बात है।" ठाकुर साहब ने कहा।

इतने में ही सुमन फिर आकर बैठ गई और फिर बोली, "प्राचीन सदस्यों में केवल आप ही दृढ सकल्पी और अजेय है, क्यों वीरेन्द्र बाबू ?"

वीरेन्द्र हँसने लगा। उसने कहा, "यदि युद्ध के समय रणक्षेत्र से प्राण बचाकर भागने वाले को अजेय कहा जा सकता है तो मुझे भी इसमें आपत्ति नहीं। परन्तु, इस प्रकार अजेय कहलाने में मैं तनिक भी गर्व का अनुभव नहीं करता।"

"आखिर, तुम्हें भी कभी हार का अनुभव हुआ ?" ठाकुर साहब ने प्रश्न किया।

"इसे फिर सुनियेगा, एकान्त में।" कहकर वीरेन्द्र ने सुमन की ओर दृष्टिपात किया। सुमन की आँखों से भी जिज्ञासा का भाव टपकते देख उसने दुबारा कहना प्रारम्भ कर दिया, "अच्छा ! जब आप दोनों ही सुनना चाहते हैं तो इच्छा न होते हुए भी सुना ही देता हूँ। बात यह है कि हमारे ब्रह्मचारी सघ के दफ्तर के सामने एक धनाढ्य बगाली सज्जन रहते हैं। उनके किरण नाम की एक २० वर्षीया सुपुत्री है। उसका रग-रूप बस, न पूछिये। उसको न जाने कहाँ से यह विदित हो गया कि मैंने इग्लेण्ड से सर्जरी पास कर ली है। बस, क्या था ! एक दिन मेरे पास वे बगाली सज्जन आकर बोले कि मेरी पुत्री रुग्ण होने की वजह से आप उसको देख लीजिए। इतना कहकर वे घोर आग्रह करने लगे। मैंने प्रार्थना स्वीकार कर ली और स्वास्थ्य निरीक्षण के लिए चला गया। किन्तु, देखने से मुझे कोई रोग के चिह्न नहीं दिखाई दिये। उसने कहा – मेरे कलेजे में आग लग रही है। मैंने औषधि का एक नुस्खा बनाकर दे दिया और वापिस चला आया। बगाली ने मुझे निरीक्षण फीस लेने के लिए आग्रह किया, किन्तु मैंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मैंने अभी प्रेक्टिस शुरू नहीं की है। एक दिन वह बगाली फिर आया और मुझसे कहने लगा – आपने जो मेरी पुत्री की चिकित्सा की थी उस बात को लेकर समाज में तरह-तरह की बातें हो रही हैं। अत इस वर्तमान स्थिति के लिए आप उत्तरदायी हैं। आप एक दिनाक निश्चित कर लीजिए मैं इस शुभ कार्य को भलीभाँति सम्पादित कर दूँगा। मुझे उनकी बात सुनकर ऐसा लगा कि मेरे पर वज्र टूट पडा है। फिर भी मैंने सभ्यता के नाते उनको अपनी किन्हीं कारणों से असमर्थता बतलायी। इस बात को सुनकर वह मुकदमा चलाने के लिए उद्यत हो गया आर मुझे नाना प्रकार की धमकियाँ देने लगा। मै बडी विपत्ति में पड गया। बाद में मुझे यह मालूम हुआ कि उपरोक्त युवती की बहुत दिनों स किसी एक धनाढ्य युवक के साथ कोर्टशिप चल रही थी किन्तु न जाने इन दोनों में किस प्रकार स अनबन हो गई और उस कामुक का अपराध मुझे भागने के लिए कहा गया। मैंने अपने-आपको इस प्रकार बडी विपत्ति में पाया आर यह निश्चय किया कि मैं विदेश चला जाऊँगा। इसके लिए मैंने अपने माता-पिता से सम्मति लेनी

चाही, परन्तु वे सहमत न हुए। अन्त में मैं बिना किसी से कहे-सुने चुपके-से विदेश चला गया।"

"वहाँ से वापिस आकर तुमने क्या देखा ?" उमरावसिंह ने मुस्कराते हुए पूछा। सुमन और भाभी भी मन्द-मन्द मुस्करा रही थीं।

"वहाँ से लौटकर मैंने देखा कि उक्त श्रीमतीजी का विवाह हो चुका था और उनके तीन-चार सन्तानें भी हो गई थीं। वे मुझे पहचान नहीं सकीं। मैंने ही अपना परिचय देते हुए पूछा - बतलाइए, आजकल दिल का जलना कैसा है ? किन्तु वे बिना कुछ उत्तर दिये ही आगे की ओर बढ गईं।" कहकर वीरेन्द्र ने हँसने का प्रयास किया किन्तु उसकी हँसी बाहर नहीं निकल सकी और वह मौन हो गया।

❑ ❑ ❑

सध्या का समय हो गया था। मजदूरनी ने आकर रोशनी प्रज्वलित कर दी थी। वीरेन्द्र ने कहा "जो कहानी मैं आपको अभी सुना रहा था, उसको मुझे विवश होकर के सुनाना पडा, मेरी इच्छा तो न थी। इसके लिए मुझे लज्जा है, दु ख नहीं।" और उसकी आँखें जमीन पर गड गईं।

सुमन ने अपने भाई के मुख पर उदासीनता के चिह्न देखकर कहा, "खैर, अपनी प्रवृत्ति को रहने दीजिए। आपकी विजय पर हम सबको प्रसन्नता है। किन्तु, बताइए कि इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी आपके मुँह से यह कहानी कैसे निकल पडी। ऐसा विदित होता था, जब आप कहानी सुना रहे थे, कि प्रगतिदेवी के नाम पर कोई कट्टर सनातनी गालियाँ दे रहा है। किन्तु आपके मन में ऐसी मनोधारणा कैसे उत्पन्न हो गई ?"

सुमन के प्रश्न से वीरेन्द्र को कुछ विश्राम मिल गया। अत वह खिलखिलाकर के हँस पडा। पर उसकी हँसी का कारण किसी के समय में न आया, इसलिए सुमन ने पूछा, "आखिर, आप हँसे क्यों वीरेन्द्रबाबू ?"

"मेरी हँसी सार्थक ही थी। सुनिये ! जिस प्रकार से कोई नागरीलिपि के अक्षर जानकर पण्डित नहीं हो सकता उसी प्रकार प्रगति के नाममात्र से कोई प्रगतिशील नहीं हो सकता। पाश्चात्य गन्दे साहित्य को पढकर जो लोग प्रगति समझते हैं, वह वास्तव में तो न प्रगति है, न विगति। वह तो अधोगति है।"

ठाकुर उमरावसिंह भी अपनी हँसी को न रोक सके। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "चोर के मुँह में राम-नाम ! क्यों वीरेन्द्र ? अच्छा, भगवान की कृपा है कि हमारे कुटुम्ब में ऐसा कोई नहीं ह, अन्यथा तुम्हारी अवस्था क्या हुई हाती ?"

सुमन ने मुस्कराते हुए कहा "भैया ! आपने वीरेन्द्रबाबू को गलत समझा। उनकी प्रतिक्रिया वास्तव में प्रगतिदेवी के विरुद्ध नहीं थी। उन्होंने तो केवल ब्रह्मचारी सघ के सदस्यों

की मनोभावना को सुन्दर ढग से व्यक्त किया है। प्रगतिदेवी तो केवल उन्होंने नामकरण कर दिया है, जिसका कोई विशेष महत्त्व नहीं हो सकता। क्यों वीरेन्द्रबाबू ?" और वह तीक्ष्ण दृष्टि से वीरेन्द्र की ओर देखने लगी।

ठाकुर उमरावसिह एक प्रकार से ऊब उठे।

वीरेन्द्र का चेहरा एकबारगी फक् हो गया और बाद में सँभल कर कहा, "भैया ! आपके प्रश्न का उत्तर फिर दे दूँगा, पहले सुमन के अभियोग का उत्तर दिया जाय क्योंकि उसका अभियोग तीव्रतम है। सच तो यह है कि मैंने जिस भावना से बात कही, उसको सुमन भलीभाँति समझ न सकी। भला नारी जाति के प्रति - उस जाति के प्रति, जिसमें हमारी माताएँ और बहनें उत्पन्न होती हैं, कोई पुरुष अपने हृदय-तल में घृणा के भाव रख सकता है ? सुमन ! तुमने मुझे गलत समझा। और भैया !   "

किन्तु बीच में ही सुमन ने टोकते हुए कहा, "भला आप भी क्या गजब ढहाते हैं कि एक छोटी-सी बात को बडा बतगड बना दिया वीरेन्द्रबाबू !"

वीरेन्द्र ने उत्तर दिया, "पर, आपका भी मेरे प्रति अभियोग इतना भीषण था कि उसकी उपेक्षा करना मेरे लिए असह्य हो रहा था। तो, अब चलो भैया ! आपके प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ। प्रगतिवादी यानी उस पाश्चात्य साहित्य की प्रगतिदेवी ने जो-कुछ अपनाया, उसको हमारे सघ का कोई भी सदस्य नहीं अपना सकता। आज की सभ्यता चाहे भले ही नारी जाति की मखौल उडाये, लेकिन प्राचीन नारी जाति की गौरवगाथा के आगे मेरा मस्तक नत है। आजकल लोग नारी को भोग की सामग्री मात्र समझते हैं किन्तु मेरे हृदय में उसका ऊँचा स्थान है।"

ठाकुर उमरावसिह ने चौंक कर कहा, "वीरेन्द्र, तुम्हारी इस प्रगतिवाद की बात को मैं नहीं समझ सका, जरा स्पष्ट समझाओ। चोर के मुँह से राम-नाम निकलने की भाँति यह व्याख्या तुम्हारे मुख से कुछ सगत-सी नहीं जँचती। अच्छा सुमन ! आज बहुत सर्दी मालूम हो रही है। जरा एक प्याला चाय तो पिला देती !"

सुमन उठकर चलती हुई बोली, 'वीरेन्द्रबाबू ! जरा अपनी कहानी थोडे समय के लिए स्थगित कर देना। मैं अभी आयी, ज्यादा देर नहीं लगेगी। तरुण तब तक तुम अपने चाचा से बातचीत करो !

तरुण अब तक शांति के साथ दत्तचित्त होकर उनकी बातें सुन रहा था, "चाचा मैं प्रगति खाऊँगा। ' उसने बुआ के जाते ही अपने चाचा से कहा।

पहले-पहल तो न वीरेन्द्र और न उमरावसिह ही उसकी बात को समझ सके कि तरुण के खान की वस्तु क्या है ? किन्तु ज्यों ही वीरेन्द्र की समझ में आया त्यों ही उसने तरुण को

गोद में उठाते हुए कहा, ' हाँ, बाबू ! उसे खाना तुम। मैं भी तो तुम्हारे बाबू को यही समझा रहा हूँ। तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। तुम्हारे समय तक इस प्रगति में जरूर क्षुधा शात करने का सामर्थ्य आ जायेगा, यदि इस प्रगति की प्रगति इसी प्रकार से चालू रही तो।"

ठाकुर साहब जोर से खिलखिलाकर हँस पडे। तरुण ने अपने चाचा के मुँह पर हाथ फेरते हुए कहा, "चाचा ! एक कहानी ऐसी ही फिर कहो।" इतने में ही शकर की माँ ने आकर कहा, "तरुण बच्चा को उसकी बुआ बुला रही है।" तरुण झट से उसकी गोद में बैठ कर नीचे चला गया।

छठा परिच्छेद

चद ही समय में सुमन चाय के प्याले लेकर आयी और बोली "थोडी देर अपनी कहानी और स्थगित रखिये, वीरेन्द्रबाबू ! तरुण खाना खाने बैठा है और अगर मैं वहाँ न रहूँगी तो " कहकर अपना वाक्य पूर्ण करने के लिए छोड गई।

शोभा कई घण्टे पहले ही अपने कमरे में चली गई थी। इस समय खूब गरम कपडे ओढे हुए उसे कमरे में प्रविष्ट होते देख ठाकुर साहब बहुत अचंभित हुए। उन्होंने शोभा से प्रश्न किया, "क्यों शोभा, अभी तबियत तो ठीक है ?" इतना कहकर फिर वीरेन्द्रबाबू से कहने लगे, ' वीरेन्द्र ! जरा देखना, इस समय इसका तापक्रम कितना है ? कोई उपाय ऐसा करो कि ज्वर टूट जाय।"

वीरेन्द्र के उत्तर देने के पूर्व ही शोभा बोली उठी, "वीरेन्द्रबाबू ! मेरी चिन्ता तो ये व्यर्थ ही करते हैं, ऐसा कोई उपाय आप कीजिए कि ये जल्दी ही स्वस्थ हो जायँ।"

इस बार वीरेन्द्र भैया का तापक्रम देख ही रहा था कि ठाकुर साहब बोले, "वीरेन्द्र! तू चाहे लाख सरजरी और डॉक्टरी पास कर ले, किन्तु फिर भी मानव-प्रवृत्ति से उत्पन्न रोगों के लक्षण पहचानना तेरे बूते से बाहर है।"

वीरेन्द्र ने हँसते हुए शोभा की ओर देखा और कहा, 'भाभी ! आप मुझे क्षमा कीजिए। भैया ठीक ही कह रहे हैं। आप खडी क्यों हैं, बैठो न !'

शोभा ने सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा 'आप लोगों की बातें मुय समझ में तो आती नहीं यदि कोई रामायण, महाभारत की बातें होतीं तो अवश्य सुनती। हॉ, वीरेन्द्रबाबू ! आजकल जीवन ही कुछ ऐसा हो रहा है। सुमन कहाँ गई ? उसको ये सारी बातें समझ में आती हैं।

पत्नी की इस बात को सुनकर ठाकुर साहब ने कहा 'वह तरुण को अन्दर खाना खिलाने गई है। क्यों कोई काम है क्या ?

इसके उत्तर में शोभा ने जो-कुछ कहा वह किसी को सुनाई नहीं दिया। फिर उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, "वीरेन्द्रबाबू ! आप नाराज मत होइएगा। मैं आपकी सेवा नहीं कर सकती। अच्छा अब मैं चली। बाद में आप मुझसे एक बार मिल लीजिएगा। कोई जरूरी काम है।" और चली गई।

वीरेन्द्र ने पूछा, "भैया, तुम्हारी बातों में भाभी के प्रति अविश्वास टपकता है, सो क्यों ?"

तुम नहीं समझ सकते, वीरेन्द्र ! जिसके साथ मैंने इतना लम्बा समय बिताया है, उसके हृदय के भावों से मैं भलीभाँति परिचित हूँ कि उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।" कहकर मुस्कराने लगे।

इतने ही में सुमन लौट आई। सुमन को अकेली देखकर ठाकुर साहब ने पूछा, "तरुण कहाँ है ?"

"वह सो गया। अच्छा, वीरेन्द्र बाबू ! अब सुनाइये, अपनी कहानी।" सुमन ने भाई का उत्तर देकर वीरेन्द्र से कहा।

"कुछ प्रश्न तो कीजिए ?"

"प्रश्न अब मैं क्या करूँ ? जहाँ से कहानी स्थगित हुई थी, वहीं से आगे सुना दीजिए।" सुमन ने मुस्कराते हुए कहा।

"यही तो मेरी कमजोरी है कि जिस बात को जहाँ अपूर्ण छोड देता हूँ तो भूल जाता हूँ। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि प्रश्न कीजिए।"

"अच्छा तो सुनाइए आपकी प्रगति का फिर क्या हुआ ?"

"हाँ, मैं अब प्रगति को सद्‌गति प्रदान करता हूँ। हमें उस चीज को प्रकाश में लाना होगा, जो अब तक सभ्यता की आड में छिपी आ रही है। मैंने विदेशों का काफी भ्रमण किया है, अत उनके बारे में मैं थोडा बतलाता हूँ। ब्रह्मा को ही ले लीजिए, आज हमारे देश में जो नारी स्वातन्त्र्य का सग्राम चल रहा है, वह बहुत वर्ष पहले ब्रह्मा में चल चुका था। पर, उसका परिणाम यह हुआ कि नारी आज सरेआम बाजार में पैसों के बदले बिक रही है। जो वस्तु कल तक अमूल्य थी, यदि उसका आज मूल्याकन होने लगे तो उसकी फिर अमूल्यता कहाँ रही ? मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि नारी जाति को वर्तमान स्थिति में अपनी अधोगति का बडा भान हो रहा है।'

"आप बिना अधिकार उनके दिल की बात कैसे कह सकते हो ?" सुमन ने पूछा।

'यह अधिकार किसी के देने से नहीं प्राप्त होता। स्वय प्राप्त किया जाता है। आज

नारी-जीवन अपने तुच्छ रूप में खडा है। जो स्वतन्त्रता नाश की ओर अग्रसर हो वह स्वतन्त्रता किस काम की ? यदि नारी स्वतन्त्र होकर केवल पुरुष की भ्रमाच्छादित दृष्टि को ही प्राप्त कर सकी तो लाभ क्या ? केवल क्रय-विक्रय की वस्तु बनने से उसका महत्त्व घटता है, बढता नहीं।"

ठाकुर उमरावसिंह प्रसन्नता के मारे उछल पडे। उन्होंने कहा, "खूब कहा, भाई ! खूब ! कहो सुमन ! अब तुम क्या जवाब देती हो ?"

"मैं कोई जवाब नहीं देती भैया ! किन्तु, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वीरेन्द्रबाबू जो-कुछ कह रहे हैं, मैं समझ नहीं पाई।"

"अच्छा अपनी प्रगति की सद्गति रहने दो। अब यह बतलाओ कि तुम चाहते क्या हो ?" वीरेन्द्रबाबू के कहने से पूर्व ही ठाकुर साहब ने पूछा।

"तुम्हारे प्रश्न का अर्थ क्या है ? मैं नहीं समझ सका, भैया।"

"यही कि यह भी बुरा है, वह भी बुरा है, तो फिर कौन अच्छा है ?"

"मैं तो अपने हृदय से यही चाहता हूँ कि सब लोग मेरे ब्रह्मचारी संघ के सदस्य बनें।"

'यह तो तुम ठीक ही कह रहे हो, भैया ! परन्तु यह तो बतलाओ कि स्त्री को फिर कौनसा मार्ग अपने कल्याण के लिए ग्रहण करना चाहिए ?" सुमन ने विनीत स्वर में पूछा।

"एक डाक्टर होने के नाते मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हो सकता कि भैया इस ज्वर में भी देर तक जागते रहें। आप इन्हें जरा-सा दूध पिलाकर सुला दीजिए। हम लोगों की बातें दूसरे समय भी हा सकती हैं।"

सुमन ने कोई उत्तर नहीं दिया और उठकर चली गई। थोडी देर में उसने दूध का गिलास लाकर अपने भाई को दे दिया और वहीं मेज पर ही एक थाली में वीरेन्द्र के लिए खाना परोस कर रख दिया।

सातवाँ परिच्छेद

उस दिन रातभर सुमन को चैन न पडा। उसने अपने दरवाजे को बन्द कर लिया और तरुण को अपनी छाती से चिपका कर सो गई। लेकिन फिर भी नींद नहीं आई। उसका मस्तिष्क दिन में होने वाली वार्ता पर बार-बार गम्भीर मनन कर रहा था। आज मन-ही-मन न जाने उसके हृदय में क्यों आनन्द की उत्पत्ति हो रही थी। आज जीवन का यह पहला अवसर था जब उसके हृदय में आनन्द का अनुभव हो रहा था। आज पुरुष के प्रति जिस संदिग्ध भावना ने उसे चिन्तित कर रखा था, वह सर्वथा नष्ट हो चुकी थी।

वह सोचने लगी। वीरेन्द्र ने कहा था - ब्रह्मचारी सघ का सदस्य होने के नाते नारी को चिर-सगिनी नहीं बना सकता, यह एक दूसरी बात है। वास्तव में बात यह है कि नारी के प्रति, उस जाति के प्रति, जिसने हमारी माताओं और बहनों को जन्म दिया है, घृणा करना घोर पाप है और उसको हेय मानना किसी पुरुष के लिए सम्भव भी नहीं है।

सुमन सोचने लगी, कितने आश्चर्य की बात है कि नारी से ये लोग कितने परे रहते हैं, फिर भी उसके सम्बन्ध में इन लोगों के कितने गहन विचार हैं, सो उल्लेखनीय हैं।

वह बार-बार विचारने लगी - यह कैसे सम्भव हो सकता है कि कोई अपने शत्रु के प्रति शत्रुता न रखे ? पुरुष के हृदय-तल में जो नारी के प्रति घृणा निहित है क्या वह किसी से गोपनीय रह सकती है ? पुरुष दूसरों को धोखा देने के लालच में स्वय कितना धोखा खाता है, यह एक बडा विचारणीय प्रश्न है। सोचते-सोचते सुमन का नारी हृदय भावाक्रान्त हो गया और वह सो गई। घडी ने तीन के टणके लगाये तो उसकी आँख खुली। किन्तु वापिस करवट बदलते हुए सो गई, उठी नहीं।

❑ ❑ ❑

जिस समय सारे लोग प्रात कर्म में व्यस्त थे, उस समय ठाकुर उमरावसिंह के घर के लोग सो रहे थे। जब वीरेन्द्र उठकर बाहर आया तो देखा कि सीखचों का मजबूत फाटक बन्द है और सन्तरी कम्बल ओढे गहरी नींद सो रहा है। वीरेन्द्र ने उसे पुकारा, "शरणानन्द !"

"हाँ, सरकार !" कहता हुआ सन्तरी उठ बैठा।

"दरवाजा खोल दो।"

दरवाजा खोल दिया गया और वीरेन्द्र घूमने के लिए बाहर चला गया। सन्तरी ने पूछा, "सरकार, मैं भी साथ चलूँ ?"

"नहीं, कोई आवश्यकता नहीं।" वीरेन्द्र ने कहा और तीव्र गति से बाहर की ओर बढ गया।

नदी के किनारे वीरेन्द्र ने जो प्राकृतिक सौन्दर्य देखा, उससे वह स्तम्भित-सा हो गया। सर्द ऋतु का सूर्य जब धीमे-धीमे तुषार में से अपनी रश्मियों को फैलाने लगा तो वीरेन्द्र वापिस घर लौटा। जब वह घूमने निकला था, सारा गाँव सो रहा था। लेकिन अब चारों ओर भिनसारा हो गया था। एक जगह वीरेन्द्र ने लौटते वक्त देखा कि एक वृद्ध व्यक्ति और कुछ बालक आग जलाये हुए ताप रहे थे। उनके पास पहनने के लिए ऊनी कपडा न था, अत वे सर्दी के कारण ठिठुर रहे थे। उनमें से एक ने वीरेन्द्र को एक अपरिचित व्यक्ति पाया, अत उसने पूछा, "आप कहाँ से पधार रहे हैं, बाबूसाहब ?"

वीरेन्द्र ठहर गया। उसने कहा, "कानपुर से।"

"आपका शुभनाम ?"

वीरेन्द्र को इन लोगों की ऐसी धृष्टता देखकर हँसी आ गई और वह मन ही मन मुस्कराने लगा व बोला, "इससे आपको कोई फायदा नहीं है।" इतना कहकर तीव्र गति से आगे की ओर बढने लगा।

वृद्ध ने दुबारा चिलम चढाते हुए कहा ' मैं भी राजपूत हूँ। मेरे दो पुत्र थे। दोनों ने ही बुढापे में मेरा बदला लिया और चल बसे। खैर, ईश्वरेच्छा।' इतना कहते ही वृद्ध की आँखें डबडबा आयीं। फिर उसने जबरदस्ती आँसुओं को रोकते हुए कहा, ' अब बस, यही एक पुत्री बची है। मैं इसे नरबाधा कहकर पुकारता हूँ। इसकी आयु इतनी हो चुकी है, लेकिन अभी तक कोई विवाह का प्रबन्ध नहीं हो सका है।"

वीरेन्द्र बात का तात्पर्य भलीभाँति समझ न सका। उसने सप्रश्न नेत्रों से देखते हुए पूछा मैं समझ न सका, दादा ! क्षत्रिय के घर की बेटी और इतनी उम्र हो जाने पर भी अविवाहित बैठी है ?

"हाँ, भैया ! विवाह का कोई साधन ही तो दिखाई नहीं देता। इसने रूप-लावण्य तो ऐसा पाया है, किन्तु रूप लेकर कोई चाटेगा थोडे ही। लोग चाहते हैं रुपया, रूप नहीं।"

"इतनी लावण्यवती पुत्री का विवाह कहीं रुक सकता हे ?"

"यही तो दुर्भाग्य के नाम से पुकारा जाता है। अनेकों जगह विवाह की बात चलाई। रूप " लेकिन बाद में वृद्ध ने फिर पूछा, "आपके पिता का नाम ?"

वीरेन्द्र ने इसको भी सुन लिया। असभ्य देहातियों के इस व्यवहार से वह चिढ गया और अपने-आपको सँभालते हुए बोला, "बताइये आपका शुभनाम क्या है ?" इतना कहकर वह पृथ्वी पर बैठ गया।

इतने में ही वृद्ध बोल उठा, "ठहरिये श्रीमानजी ! आपका कीमती शॉल खराब हो जायगा।" कहकर पुकारने लगा, "अरे नरबाधा ! नरबाधा !

वृद्ध की आवाज सुनकर एक अठारह वर्षीया युवती घर से बाहर निकली, जो कि फटे हुए चिथडों से लिपटी हुई थी और उसने पूछा, "बाबा, मुझे पुकारा था ?"

वृद्ध ने जरा तडककर कहा, "देखती नहीं, दरवाजे पर एक भलेमानस बैठे हैं।" और फिर वीरेन्द्र की ओर ताकते हुए कहा, "जरा ठहरिये बाबू ! भला कहीं आपके जैसे बाबू नीचे बैठ सकते हैं ?"

इतने में तो नरबाधा अपने कपडे बदल कर बाहर एक चारपाई के साथ आई और उसको अपने बाबा के पास बिछा दिया।

नरबाधा को देखकर वीरेन्द्र के आश्चर्य का पारावार न रहा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो फटे गुदडों में लाल छिपी हुई है। वह ज्यों-का-त्यों ताकता ही रह गया। अकस्मात उसके कानों में आवाज पडी कि कोई उसे बैठने के लिए आग्रह कर रहा है। अत वह मौन धारण किये हुए चारपाई पर बैठ गया।

वीरेन्द्र को मौन धारण किये देखकर वृद्ध ने वार्ता प्रारम्भ की, "बाबूसाहब ! आपने मेरा नाम पूछा था न ? मेरा नाम सुरेन्द्रसिह है, बाप का नाम राजेन्द्रसिह है।" वृद्ध और कुछ आगे कहना ही चाहता था कि उसे खाँसी आ गई और वह चुप हो गया।

वीरेन्द्र ने कुछ नहीं कहा। वह वृद्ध की प्राणघातक खाँसी को देखता रहा।

खाँसी ज्योंही कुछ कम पडी, वृद्ध ने कहना प्रारम्भ किया, "मैं भलीभाँति परिचित हूँ कि आधुनिक सभ्यता के अनुसार किसी का नाम-पेशा पूछना असभ्यता समझा जाता है, फिर भी भाई मैं तो पुराना आदमी हूँ, अत नाम-पता पूछ कर इस प्रकार से परिचय प्राप्त कर ही लिया करता हूँ।"

वीरेन्द्र ने उत्तर दिया मैं राजपूत हूँ। मेरा नाम वीरेन्द्रसिह है।"

मुडा, उसकी नजर सन्तरी शरणानन्द पर पडी। शरणानन्द ने बतलाया कि मेरे लौटने में देर होने की वजह से ठाकुर साहब ने मेरी खोज में उसे भेजा था।

रास्तेभर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई तरुणी उसके आगे-आगे, आँखों के सामने दौडी जा रही है। ज्योंही वह घर पहुँचा तो देखा कि ठाकुर साहब और सुमन दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देखते ही सुमन कह उठी, "बाप रे बाप ! अब शाति मिली है। अभी तक तो भैया आपकी चिन्ता में परेशान थे जैसा कि उनके चेहरे से आप मालूम भी कर सकते हो। आप आखिर रहे कहाँ ? कहीं मार्ग तो नहीं भूल गये थे ?"

वीरेन्द्र का चित्त भी प्रफुल्लित हो गया। उसने कहा, "मेरे लिए कोई उत्कण्ठापूर्ण प्रतीक्षा करे, यह मुझे अच्छा लगता है।" और फिर उमरावसिह की नाडी अपने हाथ में लेकर देखते हुए बोला, "हाँ, ज्वर उतर गया है। मैंने रात ही एक नुस्खा तैयार कर लिया है। उसे लेलो, बुखार ठीक हो जायगा।"

सुमन ने नुस्खा अपने हाथ में ले लिया और कहा, "अच्छा, अब बैठो न ! थोडी चाय पी लो।" और अपने भाई से बोली, "भैया, दो-चार बिस्कुट चाय के साथ खा लो न !"

उमरावसिह ने वीरेन्द्र की ओर देखकर कहा, "क्यों वीरेन्द्र ! इतनी देर कहाँ लग गई ?"

वीरेन्द्र ने शुरू से लेकर अन्त तक कहानी कह सुनाई और कहने लगा, "दुनिया की अक्ल कब ठिकाने आयगी ? केवल चाँदी के टुकडों के लिए एक अनुपम-सी सुन्दरी का जीवन नष्ट हो रहा है। मैंने तो यह निश्चय किया कि सुरेन्द्रसिह को कुछ सहायता दूँ। लेकिन इस कारण से वापिस हिचक करके रह गया कि न जाने वह दान के रुपये लेगा या नहीं ?"

उमरावसिह ने भी उसके सन्देह को निवृत्त करते हुए कहा, "तुम्हारा सोचना भी ठीक था, वीरेन्द्र ! सुरेन्द्रसिह किसी का दान स्वीकार नहीं करते। मैंने भी उनकी दयनीय अवस्था देख कर लगान माफ कर दिया था, परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया और अपनी जायदाद बेचकर सारा बकाया अदा कर दिया।"

सुमन ने आज वीरेन्द्र से बात करने के लिए पहले से ही सारा काम समाप्त कर लिया था। उसका मन आनन्दित हो रहा था, सो वीरेन्द्र के मुख से किसी अन्य लडकी के रूप-लावण्य की शोभा सुनकर जाता रहा और अब उसको ईर्ष्या हो रही थी।

❑ ❑ ❑

दोपहर के समय वीरेन्द्र नदी में स्नान करने के लिए त्रिपुण्डधारी को साथ लेकर चला

"लावण्य देखकर तो सब राजी हो गये आर कहने लगे साक्षात् दुर्गा है किन्तु लक्ष्मी का प्रश्न आते ही तमाम इन्कार करने लगे। यही तो ससार है भैया ! क्या किया जाय?"

वृद्ध की गाथा सुनकर वीरेन्द्र की आँखों में आँसू गिरने लगे। उसने पूछा, "जमीन-जायदाद कुछ नहीं है क्या दादा ?"

"था भाई ! सब-कुछ था। इधर तो भयानक अकाल पड चुका था। अत उसे बेचकर सालभर पेट भरा और जमींदार का कर्ज चुकाया और अब जो-कुछ बचा है, उससे एक दिन खाने का भी प्रबन्ध होना असम्भव दिखाई देता है।" कहते-कहते वृद्ध का कण्ठावरोध हो गया। फिर उसने कहा, "भाई, क्षमा करना, काफी देर हो गई। किन्तु अब दु ख वाकई सुनने ही लगे तो पूरी कहानी सुनते ही जाओ।" कहकर वृद्ध ने हुक्के का एक कश लिया।

वीरेन्द्र ने उठते हुए पूछा, "क्या आपके जमींदार आपकी दु ख-गाथा की कोई सुनाई नहीं करते ?"

"करते हैं। बडी देर से करते हैं। पहले तो शोषण करते हैं और बाद में करते हैं। यह सारी दुनिया जानती है। लेकिन दान के धन पर कोई कब तक अपना निर्वाह कर सकता है ?" वृद्ध फिर खाँसने लगा। ज्यों ही खाँसी कम हुई, कहना प्रारम्भ कर दिया, "मैंने बहुत वर्षों तक सीमान्त प्रान्तों में गवर्नमेंट के सैनिक विभाग में कार्य किया है। फिर नौकरी छोड कर पेंशन पर गुजारा करता रहा। पर कोइ भीषण दुर्घटना घटने के कारण वापिस अपनी मातृभूमि चला आया, सोचा कि अपनी जन्मभूमि है, लोग अवश्य मुझे सहायता देंगे, किन्तु बात बिल्कुल उलटी निकली। अब किसी तरह से पेन्शन से ही काम चला रहा हूँ। यदि गाँव के मनुष्यों के भरोसे रहूँ तो एक दिन भी काम चलना असम्भव हो जायगा, किन्तु जमींदार उमरावसिहजी की दयालुता के कारण किसी तरह दिन कट रहे हैं।"

'वह कैसे ?" वीरेन्द्र ने पूछा।

"ठाकुर उमरावसिहजी जैसा भला, हित चाहने वाला व्यक्ति मेरे लिए अन्य कोई नहीं है, वे अन्य जमींदारों की भाँति नहीं हैं जो कि गरीब कृषकों का शोषण करते हैं। उनके हृदय में मानवता के प्रति दया है। अत उन्हीं की दया के कारण ही किसी भाँति दिन कट रहे हैं।" इतना कहमर वृद्ध फिर खाँसने लगा।

वीरेन्द्र क्षणभर तक न जाने क्या सोचता रहा। उसने देखा कि नरबाधा किवाड की ओट में झुक-झुक कर बार-बार उसकी ओर देख रही थी। ज्योंही उसने उसकी तरफ झाँका, वह अन्दर भाग गई। वीरेन्द्र ने कहा "अच्छा दादा ! अब मैं चला।"

वृद्ध ने भी विदाई देते हुए पूछा, 'कहा जाना होगा ?'

मैं तो आपके जमींदार साहब का मेहमान हूँ।' कहकर वीरेन्द्र ज्योंही घर की ओर

मुडा उसकी नजर सन्तरी शरणानन्द पर पडी। शरणानन्द ने बतलाया कि मेरे लौटने में देर होने की वजह से ठाकुर साहब ने मेरी खोज में उसे भेजा था।

रास्तेभर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई तरुणी उसके आगे-आगे, आँखों के सामने दौडी जा रही है। ज्योंही वह घर पहुँचा तो देखा कि ठाकुर साहब और सुमन दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देखते ही सुमन कह उठी, "बाप रे बाप ! अब शाति मिली है। अभी तक तो भैया आपकी चिन्ता में परेशान थे जैसा कि उनके चेहरे से आप मालूम भी कर सकते हो। आप आखिर रहे कहाँ ? कहीं मार्ग तो नहीं भूल गये थे ?"

वीरेन्द्र का चित्त भी प्रफुल्लित हो गया। उसने कहा, "मेरे लिए कोई उत्कण्ठापूर्ण प्रतीक्षा करे, यह मुझे अच्छा लगता है।" ओर फिर उमरावसिह की नाडी अपने हाथ में लेकर देखते हुए बोला, "हाँ, ज्वर उतर गया है। मैंने रात ही एक नुस्खा तैयार कर लिया है। उसे लेलो, बुखार ठीक हो जायगा।"

सुमन ने नुस्खा अपने हाथ में ले लिया और कहा, "अच्छा, अब बैठो न ! थोडी चाय पी लो।" और अपने भाई से बोली, "भैया, दो-चार बिस्कुट चाय के साथ खा लो न !"

उमरावसिह ने वीरेन्द्र की ओर देखकर कहा, "क्यों वीरेन्द्र ! इतनी देर कहाँ लग गई ?"

वीरेन्द्र ने शुरू से लेकर अन्त तक कहानी कह सुनाई और कहने लगा, "दुनिया की अक्ल कब ठिकाने आयगी ? केवल चाँदी के टुकडों के लिए एक अनुपम-सी सुन्दरी का जीवन नष्ट हो रहा है। मैंने तो यह निश्चय किया कि सुरेन्द्रसिह को कुछ सहायता दूँ। लेकिन इस कारण से वापिस हिचक करके रह गया कि न जाने वह दान के रुपये लेगा या नहीं ?"

उमरावसिह ने भी उसके सन्देह को निवृत्त करते हुए कहा, "तुम्हारा सोचना भी ठीक था, वीरेन्द्र ! सुरेन्द्रसिह किसी का दान स्वीकार नहीं करते। मैंने भी उनकी दयनीय अवस्थ देख कर लगान माफ कर दिया था, परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया और अपनी जायदाद बेचकर सारा बकाया अदा कर दिया।"

सुमन ने आज वीरेन्द्र से बात करने के लिए पहले से ही सारा काम समाप्त कर लिया था। उसका मन आनन्दित हो रहा था सो वीरेन्द्र के मुख से किसी अन्य लडकी के रूप-लावण्य की शोभा सुनकर जाता रहा और अब उसको ईर्ष्या हो रही थी।

❑ ❑ ❑

दोपहर के समय वीरेन्द्र नदी में स्नान करने के लिए त्रिपुण्डधारी को साथ लेकर चला

गया। लोटते वक्त एक मकान की ओर इशारा करके कहा "क्यों त्रिपुण्डधारी, यही है न सुरेन्द्रसिह ठाकुर का मकान ?"

त्रिपुण्डधारी को सुवह की घटना का मालूम नहीं था। उसने कहा "हाँ, हुजूर ! कोई काम हे क्या?"

"हाँ, त्रिपुण्डधारी, जरा एक वार आवाज तो दे दो।"

जहाँ वीरेन्द्र बात कर रहा था, वहाँ से सुरेन्द्रसिह का मकान करीव वीस गज फासले पर था। त्रिपुण्डधारी ज्यों ही आवाज देने के लिए आगे की ओर अग्रसर हुआ, उसकी नजर नरबाधा पर पडी। वह कह रही थी, "बाबा को ज्वर आ गया है। अगर आप मिलना चाहें तो कृपया अन्दर आकर ही मिल लीजिये।"

उसकी वाणी में विनय और माधुर्य था। नतनयन एक तरुणी द्वारा की गई विनय का उल्लघन करके चले जाना ब्रह्मचारी सघ के सदस्य के लिए सम्भव न था। अत वीरेन्द्र त्रिपुण्डधारी को बाहर खडा रहने का आदेश देकर अन्दर मिलने के लिये चला गया।

अन्दर पहुँचते ही नरबाधा ने कहा, "जरा ठहरिये, मैं बाबा को सूचित कर दूँ।" और अन्दर चली गई। तत्क्षण ही लौट कर उसने कहा, "आइये !" नरवाधा का अनुसरण करके वीरेन्द्र कमरे के अन्दर गया तो क्या देखता है कि बेचारा वृद्ध तेज बुखार में पडा हुआ, फटे चिथडों में लिपटा हुआ, एक टूटी चारपाई पर लेटा है। वीरेन्द्र के आते ही वृद्ध ने आँख खोली। उसने वृद्ध की नाडी का निरीक्षण किया ओर कहा, "मैं नदी पर नहाने गया था। वापिस लौटते वक्त सोचा, आपसे मिल लूँ पर मुझे यह नहीं मालूम था कि आपको बुखार आ गया है।"

वृद्ध ने हाथ से इशारा करके वैठने को कहा ओर बाद में कहने लगा, "मेरा कितना सौभाग्य हे कि दुवारा मिलने के लिए आए। ' और फिर नरवाधा को पुकारा, "नरबाधा ! अरी ओ नरबाधा !"

"क्या है बाबा ?" कहती हुई नरवाधा हाथ में एक तिपाई लिए हुए आई और जमीन पर रख दी और वीरेन्द्र से बोली, ' बैठिए !"

उसके हाथ में तिपाइ देखकर वृद्ध ने आगे कुछ नहीं कहा। वीरेन्द्र ने उस पर बैठते हुए कहा, "मैंने विदेश में सर्जरी पास की हे। मैं आपके लिए अभी घर लौट कर दवा भेज देता हूँ। पर आपको पथ्य का सहारा लेना होगा अन्यथा आपको ज्वर बहुत सतायेगा।"

"हाँ, भेज दीजिए। वीरेन्द्रबाबू, यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो मैं सहायता स्वीकार नहीं करता पर आप तो मेरे सजातीय हैं। मैं पथ्य का नियमानुसार पालन करूँगा। क्या करूँ वीरेन्द्रबाबू ! मैं सदा से ही दरिद्र न रहा हूँ, मैंने भी धनवानी के दिनों का अनुभव किया है

मैं भी चैन की परिस्थितियाँ देख चुका हूँ। अब मरने का समय आ गया है। पर, क्या करूँ, अभी तो मुझे जिन्दा रहना होगा। केवल इस अभागी बाला के लिए। क्या करूँ ?" वृद्ध ने कहा और फिर पुकारने लगा, "नरबाधा ! सुन तो बेटी।"

"अभी आई बाबा ! क्या काम है ?" नरबाधा ने उत्तर दिया।

"देखो बेटी, आप अभी नदी से स्नान करके आ रहे हैं। कुछ पीने के लिए पानी तो देओ।"

वीरेन्द्र को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस प्रकार सुदामा के तन्दुल स्वीकार करे। नरबाधा, वीरेन्द्र के कुछ कहने के पहले ही वहाँ से चली गई और एक तश्तरी में कुछ गिरी और गिलास में पानी लेकर आई।

वृद्ध ने फिर वीरेन्द्र को कहा, "बाबूसाहब, यदि हो सके तो एक बार दिन में कम-से-कम मिल तो लिया करो, ताकि हृदय में कुछ शाति तो रहे।"

"इसकी आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिए। कारण कि जब मैंने आपकी चिकित्सा का भार ले लिया है तो मैं इसकी चिन्ता करूँगा।" फिर वीरेन्द्र ने वृद्ध को उत्तर देने के पश्चात् नरबाधा की ओर देखकर कहा, "मैं अभी दवा भेज रहा हूँ, आप उसे अभी पानी के साथ दे दीजिएगा।"

"ठीक साहब !" नरबाधा ने उत्तर दिया। वीरेन्द्र ने घर जाकर देखा तो उसके विलम्ब के कारण सुमन अत्यन्त उदास दिखाई देती थी। सुमन के कहने के पूर्व ही वीरेन्द्र ने कहा, "मैं अभी आया सुमन ! केवल नुस्खा लिख कर लाता हूँ।" इतना कह कर वह अपने कमरे में चला गया।

आठवाँ परिच्छेद

नुस्खा लिखने के बाद वीरेन्द्र ने कमरे से बाहर आकर त्रिपुण्डधारी के हाथ में नुस्खा और दस रुपये का एक नोट निकालकर दिया और कहा, "त्रिपुण्डधारी ! यह दवा बाजार से खरीदकर सुरेन्द्रसिंह को पहुँचा दो। उस गरीब का कुछ उपकार करो, भगवान तुम पर प्रसन्न होंगे।"

त्रिपुण्डधारी ने अपने स्वभाव के अनुसार सिर झुका कर कहा, "हुजूर, आप बेफिक्र रहें। भगवान प्रसन्न हों चाहे न हों, आप तो हो जायेंगे, यही मेरे लिए काफी है।" और चला गया।

फिर वीरेन्द्र ने ठाकुर साहब के कमरे के अन्दर आकर देखा कि वे गम्भीर निद्रा में लीन हैं और सुमन उदास चेहरा लिए खडी खिडकी के बाहर कुछ देख रही है। वीरेन्द्र ने कहा, "सुमन, मुझे काफी देर हो गई, क्षमा कर दीजिए।"

सुमन ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और कहा, "आप बैठिए, मैं खाना लाती हूँ।" और वह चली गई।

बात यह थी कि जिस समय वीरेन्द्र नुस्खा लिख रहा था उसी समय त्रिपुण्डधारी को बुलाकर सुमन ने पूरा किस्सा सुन लिया था। त्रिपुण्डधारी ने नमक-मिर्च लगाकर जो-कुछ सुनाया उसकी सत्यता पर मनन करने का मौका सुमन को नहीं मिला या यों कहिए कि उसकी सत्यता पर विचार करना अनावश्यक समझा और यही कारण था कि इस समय उसके हृदय की व्यथा की छाप उसके चेहरे पर पड रही थी।

सुमन ने खाना लाकर रखा और उसके पास ही बैठ गई। वह प्रतीक्षा कर रही थी वीरेन्द्र द्वारा विलम्ब के लिए सफाई पेश करने की। पर सुमन का उदास मुख निरखकर वीरेन्द्र ने कुछ नहीं कहा।

उमरावसिह सो रहे थे। वीरेन्द्र का मौन सुमन के लिए इतना दु खदायी हो गया कि उसने एक बार चीखना चाहा पर वह ऐसा न कर सकी। यहाँ तक कि आज वीरेन्द्र को भोजन अच्छा न लगा ओर वह दो-चार कौर खाकर उठ गया। फिर भी सुमन ने कुछ नहीं कहा। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि किसी ने उसका गला घोंट दिया है और उसके मुँह से आवाज नहीं निकल सकती।

हाथ धोने के बाद वीरेन्द्र ने तोलिये से मुँह पोंछते हुए पूछा, "आज आपकी तबीयत चगी नहीं है क्या ?"

सुमन से कोई उत्तर न बन पडा। उसे रुलाई-सी आ गयी। फिर भी उसने अपने को सँभालते हुए कहा, "नहीं तो। में अच्छी हूँ।"

वीरेन्द्र ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "नहीं, आप अच्छी नहीं हैं। अच्छा, आपके हाथ का निरीक्षण कर लूँ।" और सुमन के सतर्क होने से पूर्व ही उसका हाथ थामकर नाडी-परीक्षा कर कहा, "नहीं, तबीयत तो अच्छी है।" और हाथ छोड दिया। फिर ब्रह्मचारी सघ के नारी-हृदय से अनभिज्ञ सदस्य ने कहा, "आप नाराज हैं। मैंने तो पहले ही भूल मान ली थी और क्षमायाचना भी कर ली थी।"

वीरेन्द्र के छूने से सुमन की नस-नस में बिजली-सी दौड गई। उसने अपना हृदय कठोर करते हुए कहा, "जरा शान्त होइए, वीरेन्द्रबाबू ! यह सम्भव हे कि कोई नारी को पैर की जूती समझ कर उसे दूर रखने में ही गर्व का अनुभव करे, किन्तु हृदय में जो क्षुधा और तृष्णा है, उसे भूलकर भी दूर नहीं कर सकता।" ओर फिर जबरदस्ती प्रयत्न कर हँसने लगी।

सुमन को हँसते देखकर वीरेन्द्र को कुछ सात्वना मिली। उसने कहा, "अब मेरी जान में जान आई। गलती मेरी ही थी। मुझे कुछ भी खयाल नहीं था कि दो बज गये हैं। मुझे जो-कुछ इस सम्बन्ध में कहना है उसे शाम को कहने से कोई नुकसान तो न हो जायेगा ?"

"हाँ ! न कहने पर भी कोई नुकसान नहीं होगा।" सुमन ने उत्तर दिया और तेजी के साथ कमरे से बाहर चली गई।

सुमन जब रसोईघर से भोजन करके लौटी तो देखती है कि उसके भैया जाग गये हैं और दीवार के सहारे तकिया लगाकर बैठे हैं। उसे देखते ही उन्होंने पूछा, "क्यों सुमन ! शकर की माँ बता रही थी कि तुम अभी खाना खाने गई थी। इतनी देर क्यों हुई ?"

सुमन ने इस प्रश्न का जवाब दिये बिना ही तौलिए से हाथ पौंछा और भाई का शरीर छूकर देखने के बाद बोली, "नहीं, आज बुखार नहीं आया। यदि एक दिन और नहीं आया तो ताप बिल्कुल भूल जायेगा।' और मुस्करा पडी।

'सुमन, तूने मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दिया।" ठाकुर साहब ने फिर पूछा।

सुमन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "अतिथि को भूखा रखकर स्वय खाना भी तो ठीक नहीं बनता। साथ ही, आपने मेरे कधे पर जो बोझ डाल दिया है उसे भी तो फेंक नहीं सकती अर्थात ग्रहण करना पडेगा। खैर, आपके दवा खाने का समय हो गया, भैया।" कहकर सुमन अलमारी में से शीशी निकाल लायी ओर एक खुराक दवा एक प्याली में उडेलकर बोली, "लो, पी लो, भैया !"

दवा लेने के बाद ठाकुर साहब ने पूछा, "लेकिन, वह बन्दर चला कहाँ गया था ? नहाने गया था कि समुद्र पार करने ?"

प्रश्न जिससे किया गया था, उसने कोई जबाव नहीं दिया। बल्कि इसी समय शोभा तमतमाये चेहरे के साथ कमरे में घुसी और बोली, "क्यों जी, आपके वीरेन्द्रबाबू अभी कितने दिनों तक यहाँ रहेंगे ?"

"अभी यही दो-तीन दिन और ठहरेंगे, लेकिन यह प्रश्न एकदम कैसे उठा ?" ठाकुर साहब ने पूछा।

"हूँ। मैंने कल ही उनसे कहा था कि जरा मुझ से मिल लेना, लेकिन आज तक उन्हें फुरसत नहीं मिली। यहाँ आप भाइ-बहिन से पिण्ड छूटे तब तो। आपको कुछ मालूम भी है कि गॉव में क्या-क्या कहानी फैल रही है ? में तो आपकी अच्छाई के लिए कहती हूँ। सुमन को उसके साथ इतनी स्वतत्रता देना उचित नहीं हे। मानना न मानना आपके बस की बात है। अगर कुछ खराब हुआ, तो उसका परिणाम आप भोगेगे। मुझे क्या ?" कहकर शोभा, जिस तरह आई थी उसी तरह चली गई।

ठाकुर साहब यह वाक्बाण सहन नहीं कर सके। उन्होंने दोनों हाथ मुँह के आगे धरे ओर जोर-से रोने लगे।

"भैया, आप रो रहे हो ? आपने मुचे इतना कमजार समझ लिया है कि भाभी की इस प्रेमपूर्ण डॉट से मुझे दु ख होगा ? ' कहकर सुमन ने हँसते हुए भाई की ओर देखा।

"नहीं बहिन ! मैं तो कुछ नहीं कर सका।" ठाकुर साहब ने सिसकते हुए कहा।

' आप क्या नहीं कर सके भैया ? माँ-बाप भी जिस तरह प्यार से नहीं पालते, उस लाड-प्यार से आपने मुझे पाल-पोस कर बडा किया, इसके अतिरिक्त और क्या नहीं किया ? अर्थात् आपने मेरे लिए सब-कुछ किया। मैंने आपके ही चेहरे पर माता-पिता की छाया पाई और अपने दिल को तसल्ली दी। फिर, आपको रोते हुए मैं कैसे देख सकती हूँ ?" सुमन ने कहा।

ठाकुर साहब अभी तक सिसकियाँ भर रहे थे। उन्होंने कहा, "मैं इतने दिनों तक लापरवाह था, यह मेरी गलती थी। पर, अब चाहे जैसे हो ।"

भाई की बात पूरी होने से पूर्व ही सुमन बोल उठी, "हाँ, यही न कि चाहे जैसे हो, मुझे विदा कर दो। यही करो, भैया। अगर इसी से आपके कष्ट का अभाव हो तो यही अच्छा है।"

इसी समय वीरेन्द्र ने बाहर से आवाज दी, "उमरावसिह भैया, मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

उत्तर में सुमन बोली, "भैया तो कह देंगे, चले आइए। पर, मैं कहती हूँ, नहीं। आप पहले भाभी के पास जाइए ओर अपना वादा, जो उनसे कर रखा है, पूरा कीजिए। वे आपसे बहुत नाराज हैं।"

"अरे, मैं तो विस्मृत हो गया था। अभी जा रहा हूँ। पर यह तो बताओ, वे किस कमरे में रहती हैं ?" वीरेन्द्र ने पूछा।

"चलिए, मैं आपको बता देती हूँ।" कहकर सुमन कमरे से बाहर आ गई और वीरेन्द्र उसके पीछे-पीछे चलता गया। सुमन वीरेन्द्र को अपनी भाभी का कमरा दिखाकर वहाँ से वापिस चली आई।

ठाकुर साहब ने सुमन को देखकर पूछा, "क्यों सुमन ! क्या यह काम ठीक हुआ? इस समय तुम्हारी भाभी का जो मिजाज है, उसमें वीरेन्द्र का वहाँ जाना मेरे विचार से बिल्कुल अनुचित है।"

सुमन ने हँसते हुए कहा, "भैया, उन्हें इस समय अभिमान हो गया है ! वही तो इस समय मुसीबत की वजह है। सब ठीक हो जायेगा, आप देखतेभर रहो।" कुछ देर रुककर उसने फिर कहा, "भैया ! आप आज कहीं न जाना। मैं देख आऊँ तरुण सोकर उठा या नहीं। अगर वह उठ गया है तो सन्तरी से कह दूँ उसे कुछ दूर तक घुमा लावे।" और सुमन बाहर चली गई। उमरावसिह अनेक प्रकार की चिन्ताओं में मग्न थे।

इधर वीरेन्द्र शोभा के दरवाजे पर खडा होकर पुकार रहा था, ' भाभी ! '

इस बार उत्तर मिला, "कौन ? वीरेन्द्रबाबू ! चले आइए।"

वीरेन्द्र ने कमरे में घुसते ही कहा, भाभी, बिना जानबूझकर यदि भूल हुई हो तो क्षमा चाहता हूँ। इस भूल का कारण वही नरबाधा है। उसके माँ-बाप ने नाम सार्थक ही रखा है। अभी तक मेरा पीछा नहीं छोडा है। अभी त्रिपुण्डधारी उसका समान लेकर आता ही होगा।'

शोभा की समझ में कुछ नहीं आया। उसने कहा 'बैठिए, वीरेन्द्रबाबू। पर, यह नरबाधा कौन है ? मैं तो कुछ भी समझ नहीं सकी।'

'आप नहीं समझ सकती। पर, आपकी ननद जानती है।" ननद का नाम लेते ही शोभा जल उठी। उसने कहा, "उसे भाई ने दुलार के साथ पढा-लिखाकर पण्डित किया है। वह न समझेगी तो क्या में मूर्खा समझूँगी ? अच्छा मजाक छोडिए ठीक-ठीक वताइए, यह नरवाधा कौन है ?"

वीरेन्द्र ने उत्तर दिया, "उस अभागिन की कहानी कहने से क्या होगा, भाभी? नरवाधा वही, आपकी प्रजा सुरेन्द्रसिह ठाकुर की पुत्री है। आप नहीं पहिचानतीं क्या ?"

'नहीं भाई, मुझे क्या पता ? मुझे तो अपने इस रोगी शरीर की भी सुध-वुध रखने को समय नहीं। खेर, उसे क्या हो गया है ?"

'उसे कुछ नहीं हुआ है, भाभी। उसके वाप को हुआ है। बुड्ढा हो गया है, इसलिए तो इतनी परेशानी है। फिर भी आपकी आज्ञा सुनने आया हूँ।" कहकर वीरेन्द्र शोभा के चेहरे की ओर ताकने लगा।

"मुझे क्या कहना है ? मेरी वात तो कल भी हो सकती है। वीरेन्द्रवावू, पहले जाकर वीमार को देख आइए। मरीजों का काम पहले कर आइए। अगर यमराज को जरा भी मौका मिल गया तो अनर्थ हो जायेगा। हॉं, अगर समय मिले तो कल मुझसे एक बार अवश्य मिल लीजिएगा। मुझे एक फरियाद करनी है।"

वीरेन्द्र ने उठते हुए कहा, "और यदि आपकी फरियाद भैया के विपक्ष में हुई तो तब अदालत को आपकी दरख्वास्त हाईकोर्ट में देनी होगी, क्योंकि भैया के विपक्ष में फैसले की आशा आप मुझसे नहीं कर सकते।"

'नहीं ऐसी दरख्वास्त नहीं देनी पडेगी। में आपका निर्णय ही मान लूँगी। अच्छा अब जाओ, वरना नरबाधा के वाप का खून हो जायेगा।" कहने के वाद शोभा के चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड गई।

वाहर आने पर सुमन ने कहा, "जरा अन्दर आइए, कुछ काम हे।"

वीरेन्द्र ने कलाई पर बॅधी हुई घडी को देखकर कहा, "थोडी देर वाद यदि आऊँ तो कोई हर्ज है ?"

सुमन ने दूसरी ओर मुँह घुमाते हुए कहा, "नहीं कोई नुकसान तो नहीं होगा। लेकिन, में आपको ज्यादा देर तक रोके नहीं रखूँगी।" आर सुमन विना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये ही अपने कमरे में चली गई।

नवाँ परिच्छेद

वीरेन्द्र ने अन्दर जाकर देखा, सुमन कुर्सी के पास खडी है। वीरेन्द्र के अन्दर आते ही उसने कुर्सी की ओर इशारा करके कहा, "बैठिए !"

वीरेन्द्र व्याकुल-सा हो रहा था। उसने कहा, "बैठने की फुरसत नहीं है। आप कहें, मैं खडा-खडा सुन लूँगा।"

सुमन ने हँसते हुए कहा, "नहीं, आप कहीं भी नहीं जा सकेंगे। आपको खडे-खडे तकलीफ होगी। बेठ जाइए तो मैं आपको अपनी बात सुनाऊँ। फिर आपके मन में आवे सो कीजिएगा।"

वीरेन्द्र निराश होकर बैठ गया और बोला, "अच्छा, अब कहिए।"

सुमन ने स्थिर दृष्टि से वीरेन्द्र की ओर देखते हुए कहा, "इस समय आप जहाँ जा रहे हैं, वहाँ न जा सकेंगे। कारण "

वीरेन्द्र के लिए अब ज्यादा देर तक बैठना मुश्किल हो रहा था। उसने बीच ही में टोकते हुए कहा, "न जा सकूँगा। कहाँ ? आप यह सब क्या कह रही हैं ?"

"मैं ठीक ही कहती हूँ, वीरेन्द्रबाबू ! मैं कहती हूँ आज ही नहीं कुछ दिनों तक आप सुरेन्द्रसिह के यहाँ न जा सकेंगे। कारण, अब उनका वसन्त बीत गया और पतझड आ चुका है।"

विस्मित वीरेन्द्र बाबू ने विस्फारित नेत्रों से देखते हुए पूछा "आपको यह झूठी खबर किसने दी ?"

"मुझ से त्रिपुण्डधारी ने कहा और जब मुझे मालूम हो गया है तब मैं आपको कहीं जाने नहीं दे सकती।"

'मुझे यह भ्रम हुआ था। किन्तु आपकी इस [illegible]

आखिर मैं डॉक्टर सिद्ध हुआ। मुझसे लोग कर्तव्यपालन की आशा करते हैं और ऐसी स्थिति में आपका जो यह इन्कार करना है, वह बिल्कुल अनुचित या युक्तिसगत नहीं है।'' कहकर वीरेन्द्र ने आशापूर्ण दृष्टि से सुमन की ओर दृष्टिपात किया।

''हाँ, मैं जानती हूँ। पर, यह भी जानती हूँ कि जिस रोग की चिकित्सा करने आप वहाँ जा रहे हैं उसकी किसी औषधि का आविष्कार आज तक चिकित्सा-विज्ञान में नहीं हुआ है। खैर, अब बहस को रहने दें। आप वहाँ न जा सकेंगे, यह निश्चित है। चलिए, भैया के कमरे में चाय तैयार है।'' सुमन ने दृढ स्वर में उत्तर दिया।

वीरेन्द्र मन ही मन सोचता हुआ कि क्या यह सम्भव है ? सुमन के पीछे-पीछे चला। वीरेन्द्र को सुमन के इस रूप ओर स्वभाव पर आश्चर्य हो रहा था। केवल दो दिन के समय में ही जो नारी उसके हिताहित का खयाल कर अपना दिल इस प्रकार खोलकर रख दे, उसकी उपेक्षा किस प्रकार सभव है ? यही सोचते हुए वीरेन्द्र थोडी देर तक ठाकुर साहब के कमरे के बाहर ही खडा रह गया। पर यह क्या ? उसके कमरे के अन्दर जाते ही देखा कि सुमन चाय में चीनी घोल रही है और उसे देखते ही बोली ''आइए !''

वीरेन्द्र ने उमरावसिह की ओर देखकर पूछा, ''आज तो बुखार नहीं आया, भैया !''

सुमन के ओष्ठ आनन्द से फडकने लगे। उसने कहा, ''भैया, मैंने इनसे कहा था सुरेन्द्र बाबू की मृत्यु हो चुकी है और इसीलिए मैंने इन्हें वहाँ जाने से मना कर दिया था। इन्होंने मान लिया है। अब इन बातों को उभाडने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, वीरेन्द्रबाबू ! कोई कहानी सुनाइए। आज भैया की तबीयत नरम है। मेरा अनुरोध है कि आप मेरी सहायता करें। कहिए, करेंगे ?''

वीरेन्द्र ने बिना सोचे-समझे ही कह दिया, ''आपको जवाब देने का साहस मुझ में कहाँ है ?''

सुमन के गाल यह जवाब सुनकर हल्के लाल-से हो गये। किन्तु ब्रह्मचारी सघ के सदस्य के चेहरे का भाव तनिक भी परिवर्तित नहीं हुआ।

आज ठाकुर उमरावसिह का हृदय बिल्कुल अशान्त था। इसका कारण स्वय उन्हें भी कुछ पता न था। पर सुमन और वीरन्द्र के आने के कारण उन्हें कुछ धैर्य भी मालूम हुआ। उन्होंने अपने चेहरे पर हँसी लाने की कोशिश की और कहा, ' सुमन, एक कप चाय और दो न।''

सुमन ने भैया को एक कप चाय और देने के बाद वीरेन्द्र से पूछा ''आपको भी एक प्याला और दूँ ?''

वीरेन्द्र ने कहा, "दीजिए। लेकिन इसके बाद और कुछ खाने को मत कहिएगा। कारण, अगर आपने कहा तो मैं आपकी बात अमान्य करने के लिए बाध्य हो जाऊँगा।"

"इससे विवाद बहुत बडा हो जायेगा। आज आप जानते हैं, तरुण क्या कह रहा था? वह कह रहा था - बुआ बडे होने पर मैं भी काका की तरह शादी न करूँगा।" सुमन ने कहा।

"आखिर, उस बच्चे के मस्तिष्क में आज विवाह की बात क्यों आई ?"

"उसके दिल में ऐसी बातें प्राय आया करती हैं और एक का समाधान होने के पूर्व ही उसी प्रकार के और कई सशय खडे हो जाते हैं। इसका कारण तो वे ही समझ सकते हैं जिन्होंने मानव-हृदय का मनन किया है।" उमरावसिह ने उत्तर दिया और भैया का उत्तर सुनकर सुमन अत्यधिक प्रसन्न हो उठी।

वीरेन्द्र ने कहा, "ईश्वर है या नहीं, इस मूढतापूर्ण विवाद में फँसने से हम लोगों को लज्जा का अनुभव नहीं होता। किन्तु एक बच्चे का मस्तिष्क हम कैसे जान सकते हैं ?" कहते-कहते वीरेन्द्र का गला भर आया।

फिर भी उसने कहा, "कभी-कभी जब रात में नींद जगती है और शीतल वायु की लहरें शरीर को स्पन्दित कर देती हैं और आकाश में तारागण के बीच चन्द्रमा को रोशनी छिटकाते देखता हूँ तो दिल पुकार-पुकार कर यही कहता है कि हे भगवान। हृदय में तेरे अस्तित्व के प्रति संदेह होने के पूर्व ही शरीरान्त कर दे तो अच्छा।"

वीरेन्द्र की इस आस्तिक भावना के कारण ठाकुर साहब और सुमन दोनों का हृदय प्रेम से भर गया।

वीरेन्द्र ने थोडी देर बाद अपने को सँभालते हुए कहा, "भैया, आजकल यह एक नया रोग हो गया है। मुझे किसी तरह यह हटता दिखाई नहीं देता।"

सुमन ने श्रद्धापूर्वक कहा, "मैं तो यही प्रार्थना करती हूँ, वीरेन्द्र बाबू कि इस रोग में समस्त विश्व के मानव दुखित हो जाएँ।"

उमरावसिह ने वीरेन्द्र को विस्मित दृष्टि से देखा और कहा, "वीरेन्द्र। मेरी इस बहिन को समझने के लिए कुछ समय लगेगा। मेरे जीवन में यही एक साधना की वस्तु है। अभी तक मैं यह नहीं जान सका कि अपनी साधना में सफल हुआ या नहीं ? सुमन के शरीर को उसकी आत्मा से दूर कर जरा भी नहीं समझा जा सकता।"

सुमन ने कहा, "खूब। अब मेरे प्राण नहीं बच सकते। भैया, मैं नहीं समझती थी कि आप इतने निष्ठुर भी हो सकते हैं।" फिर वीरेन्द्र की ओर देखकर वह बोली वीरेन्द्रबाबू! भैया जो कुछ कह रहे हैं, उसे खूब सोच-समझकर ही स्वीकार कीजिएगा। कारण, भैया की

नजरों में मैं जो-कुछ हूँ, उसे उनके सिवाय और कोई नहीं समझ सकता। इसलिए इस तुच्छ मूल्यवान चीज का मूल्य आँकने वाला शायद ही कोई मिले। भैया भी इसे मजूर करते हैं।"

दो और दो चार की नीति पर विश्वास करने वाले वीरेन्द्र की समझ में सुमन की बात न आ सकी। उसने कहा, "सुमन, आपने शायद मुझे बहुत बुद्धिमान समय लिया है। पर, बात कुछ ऐसी नहीं है। आप जब तक, जो-कुछ कहना है, स्पष्ट न कहेंगी, तब तक मैं कुछ नहीं समझ सकता। यद्यपि यह सत्य है कि मनुष्य की शरीर-रचना एक ही प्रकार के पचभूत तत्त्वों का समावेश है। तथापि भगवान ने जिह्वा और मस्तिष्क सबके अलग-अलग बनाये हैं ।"

इसी समय शकर की माँ ने आकर सूचना दी कि वीरेन्द्रबाबू से मिलने के लिए एक महिला बाहर आकर खडी है। समाचार सुनकर तीनों के तीनों अवाक् रह गये। शकर की माँ को और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। नरबाधा कमरे के बाहर ही खडी थी। वह बिना किसी की अनुमति की अपेक्षा किये अन्दर आ गई और अपने दोनों कोमल हाथों को जोडकर सबको नमस्कार किया और फिर वीरेन्द्र की ओर मुडकर अति मधुर और स्पष्ट शब्दों में कहा, "आपको एक बार कष्ट करके मेरे यहाँ चलना ही होगा। बाबा की तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गई है। सारे शरीर में एक प्रकार के दाने-से उठ गये हैं। दर्द इतना अधिक है कि कराह रहे हैं। कृपा करके चलिए।" कहते-कहते नरबाधा का स्वर भारी हो गया और आँखों से मोती बरसने लगे।

वीरेन्द्र का कोमल हृदय पिघल गया। उसने और किसी की ओर न देखते हुए ही नरबाधा को सम्बोधित करके कहा, "आप चलिए, मैं तुरन्त आया।"

नरबाधा एक बार फिर बिना किसी को कुछ कहे, नमस्कार करके कमरे से बाहर निकल गई। उसके बाहर निकलते ही ऐसा लगा मानो एक विद्युत रेखा सबको कमरे में प्रवेश कर जगमगा कर पुन अधकार में लीन हो गई।

सुमन भी उठकर खडी हो गई। उसने नरबाधा के पीछे वीरेन्द्र को भी जाते हुए देखा था। उसका रूप विवर्ण हो गया था। फिर भी उसने अपने को सँभाला और जैसे-तैसे कर अपने कमरे में पहुँचकर चारपाई पर गिर पडी।

उमरावसिह ने कुछ नहीं कहा। सुमन का चेहरा देखकर उनका हृदय रो पडा और उन्होंने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढक लिया और रोने लगे।

दसवाँ परिच्छेद

उस दिन पूर्णिमा का चन्द्रमा बादलों की ओट में से चुपके-चुपके झाँक रहा था। उसी समय ग्राम-पथ पर नरवाधा और वीरेन्द्र दोनों चले जा रहे थे। थोडी दूर जाने पर वीरेन्द्र को सहसा रुकते देखकर नरवाधा ने प्रश्न किया, "क्या, विचार कर रहे हैं, आप ?"

"यही सोच रहा हूँ, सतरी शरणानन्द को साथ लेते चलूँ या नहीं ?"

"क्यों, उससे क्या काम है ?"

"यही कि रात्रि का समय है, किसी का साथ होना अच्छा होगा।"

"क्या आपको भय लगता है ?"

"नहीं, मेरे डर की कोई बात नहीं, आपके लिए।"

"मेरे लिए भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं अब इस गाँव के कण-कण से परिचित हूँ।"

इसके बाद दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई और मौन धारण किए हुए चलते गये। थोडी दूर जाने के पश्चात् नरवाधा ने कहा, "मैं आपके इस उपकार के लिए महान् आभारी हूँ। बाबा मनुष्य को भलीभाँति पहिचानत हैं। इसीलिए ही आपका और बाबा का इतना जल्दी प्रेम हो गया। आज वे हीन अवस्था में हैं, किन्तु हैं बडे बुद्धिमान और धुरन्धर पण्डित।"

वीरेन्द्र निरुत्तर आगे बढता गया। नरवाधा ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "देखिए ! हम लोग बहुत वर्षों तक पश्चिम के सीमान्त प्रदेशों में रहे, किन्तु किन्हीं दुर्घटनाओं के कारण मेरी माता की मृत्यु हो गई।" इतना कहते ही उसकी आँखों में पानी भर आया, लेकिन फिर उसने सँभलते हुए कहा, "माँ, की मृत्यु के बाद, कुछ ही वर्ष हुए, हम यहाँ वापिस लौट आये। आज हम गाँव के घृणित मनुष्य हैं। हमारी कोई कीमत नहीं, कारण कि हमारे पास कोई धन नहीं है। कहने को तो लोग मुझे अत्यन्त सुदरी बतलाते हैं और कहते हैं कि मेरा उचित सत्कार

राजा के साथ व्याही जाकर भी होना असम्भव है। किन्तु दुनिया में क्या केवल रूप ही सब-कुछ है ? यदि है तो मेरी आज यह दशा न होती।"

वीरेन्द्र ने अपने भैया की बात को स्मरण किया। उसके भाई ने कहा था, "एक बार एक बडे जमींदार के पुत्र के साथ इस नरबाधा की सगाई की बात हुई थी, किन्तु सुरेन्द्रसिंह ने गाँव के पूरा जोर देने पर भी बात अस्वीकार कर दी। अत वीरेन्द्र ने कहा, "राजरानी की शोभा नहीं तो एक बडे जमींदार की शोभा तो बढा ही सकती थी। पर, मैंने सुना था, आपके पिता ने उस बात का अस्वीकार कर दिया था। अत आपका यह दु ख तो स्वेच्छापूर्वक ही माना जायेगा।"

"नहीं, अगर कोई ऐसी बात होती तो मेरे पिता अस्वीकार नहीं करते। उस सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ रुकावट अवश्य पडी होगी, तभी तो बापू ने ऐसा किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं।"

बातचीत करते वक्त वीरेन्द्र और नरबाधा एक-दूसरे के पास-पास चल रहे थे, अत नरबाधा ने कहा, "जरा मेरे से दूर हट कर ही चलिए, अन्यथा किसी ने देख लिया तो सारा गाँव मुझे कच्चा ही चबा जायेगा।"

वीरेन्द्र सचेत हुआ और वह हटकर चलने लगा। इस पर नरबाधा ने हँसी की, "मैं यह कभी भी नहीं जानती थी कि ब्रह्मचारी सघ के सदस्य इतने आत्मविश्वासहीन और कमजोर होते हैं।"

"आपको मेरे सघ के बारे में कैसे विदित हो गया ? और रही आत्मविश्वासहीनता और कमजोरी की बात, सो बिल्कुल सत्य है, ऐसा मैं मानने के लिए तत्पर नहीं हूँ। आप इसे कमजोरी कैसे मानती हैं ? सावधानी क्यों नहीं मानतीं ?'

"मुझे त्रिपुण्डधारी से मालूम हो गया था। कमजोरी जिसको कि आप नहीं मानते हैं, सो तो हो सकता नहीं। कारण कि आप जैसे व्यक्ति, जो कि नारी की अवज्ञा के सिद्धान्त को मानने वाले हैं, इस प्रकार का व्यवहार करें तो उसको कापुरुषता, कमजोरी न कहें तो क्या कहें? आप डरते हैं। जिसकी आप अवज्ञा करते हैं, उससे डरें। यह और क्या है ? नारी के साथ अकेले चलने में भी आपको भय लगता है, यह कमजोरी और आत्मविश्वासहीनता नहीं है तो और क्या हो सकता है ?"

वीरेन्द्र को इस नारी के अकाट्य और साहसपूर्ण तर्क पर विस्मय हो रहा था। वह अकस्मात खडा होकर न जाने क्या सोचने लगा।

'आप खडे क्यों हो गये ? यही तो मेरा मकान है। चलिए !' नरबाधा ने वीरेन्द्र का एक हाथ खींचते हुए कहा।

वीरेन्द्र ने बलात् हाथ को छुडाते हुए कहा, "चलो । आप आगे चलिए। मैं पीछे से आ रहा हूँ।"

नरबाधा ठहाका मारकर हँस पडी और कहने लगी, "दुर्बलता प्रकट हो जाने पर आँखों को लाल-पीली कर तरेरना कोई बहादुरी नहीं है वीरेन्द्रबाबू । मैं कुछ कहना ही नहीं चाहती थी, किन्तु आपने ही तो कहकर मुझे बाध्य किया। आप कल ही ब्रह्मचारी सघ से अलग हो जाइयेगा, अन्यथा सघ के प्रति आप विश्वासघात करेंगे। आज बाबा की तबीयत अच्छी नहीं है, अत मैं ज्यादा-कुछ न कहूँगी। अच्छा, मैं चली। आप आइये।" कहते हुए वह अन्दर जाने लगी।

वीरेन्द्र थोडी देर तक वहीं खडा रहा। फिर अपने को सम्हालकर दरवाजे की ओर आगे बढा। उसने देखा - नरबाधा एक चिराग लिए दरवाजे पर उसकी प्रतीक्षा कर रही है। उसे देखते ही वह कहने लगी, "आइये । बाबा को नींद आई हुई है।"

वीरेन्द्र पहले कही हुई बात बिल्कुल विस्मृत हो गया और कहने लगा, "चलूँ, पहिले देखूँ कि दाने कैसे निकले हैं ?"

वृद्ध की चारपाई के पास एक और वृद्धा बैठी थी जिसे नरबाधा ने, "मौसी, उठो। डॉक्टर साहब आ गये हैं।" कहकर उठने के लिए विवश किया।

वीरेन्द्र ने चिराग की रोशनी में दाने देखे और फिर नाडी-परीक्षा की। उसका सारा शरीर एक बार वृद्ध की मृत्यु की आशका से कपायमान हो गया, किन्तु नरबाधा उसको समझ न सकी। वह रोगी की बेहोशी के लिए अभी तक अनभिज्ञ थी, कारण कि वह सोच रही थी कि उसके बाबा नींद में सो रहे हैं। वीरेन्द्र ने उसके मुँह की ओर देखकर पूछा, "क्या यहाँ कोई दवाई की दुकान नहीं है ?"

"बहुत दूर है। यहाँ से करीब दो मील है। इससे कम न होगी।"

"चाहे लाख दूर हो, दवा तो लानी ही होगी। आप कोई प्रबन्ध कर सकती हैं ?"

त्रिपुण्डधारी ने न जाने कहाँ से सुरेन्द्रसिंह की, कहीं से सबध निकाल करके, साली ढूँढ दी थी। उस वृद्धा ने कपित स्वर में कहा, "कौन जा सकता है, बेटा ? यहाँ अपना कोई है भी तो नहीं। आपत्ति पडने पर भला कौन अपना है ?"

वीरेन्द्र गम्भीर होकर कुछ सोच ही रहा था कि नरबाधा ने पूछा, "प्रात काल दवा लाने से काम न चल सकेगा, वीरेन्द्रबाबू ?"

वीरेन्द्र नरबाधा की बात सुनकर उसकी ओर देख कर हँस पडा। उसने वीरेन्द्र से पूछा, "मेरे बाबा बच तो जायेंगे, वीरेन्द्रबाबू ?"

"घबराने की कोई बात नहीं। किन्तु दवा के बिना मैं कर ही क्या सकता हूँ ? क्या आप कोई प्रबन्ध नहीं कर सकतीं ?"

नरबाधा ने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा, "नहीं। हो सकता तो रात में मैं स्वय आपको बुलाने क्यों आती ?"

वीरेन्द्र ने सोचते हुए कहा, "मैं तो रास्ता भी नहीं जानता। हाँ, यदि दिन का वक्त होता, तो मैं कुछ प्रयत्न भी करता।" फिर तनिक ठहरकर उसने कहा, "हाँ, एक उपाय है। यह हो सकता है कि घर जाकर शरणानन्द सन्तरी को भेजूँ। इसके सिवाय और क्या हो सकता है ? अच्छा, मैं चलूँ।" यह कहकर वह बाहर जाने लगा।

नरबाधा इस बीच में कुछ सोच रही थी। उसने अकस्मात रोकते हुए कहा, "ठहरिए। क्या एक काम नहीं किया जा सकता ? मैं रास्ता जानती हूँ। आपको भी जरा कष्ट होगा। चलो, हम दोनों चलें। जल्दी ही लौट आवेंगे। शरणानन्द न जाने अन्य के काम के लिए जायेगा या नहीं, उसका क्या पता ? चलो ! हम ही ले आयें।" इस बार नरबाधा ने दृढता से कहा।

नरबाधा के वचन सुनकर वीरेन्द्र कुछ सोचने लगा और फिर बोला, "अच्छा, चलो, चलें।" दोनों घर से निकल पडे। नरबाधा ने अपना शरीर ठीक तरह से ढकते हुए कहा, "सर्दी बहुत कडाके की पड रही है, वीरेन्द्रबाबू !"

वीरेन्द्र ने घर से बाहर निकलने से पहले ही अपने-आप को ऊनी कपडों से भलीभाँति ढक लिया था और एक दुशाला उन पर डाल लिया था। अत नरबाधा को ठिठुरती देखकर उसको लज्जा का अनुभव हुआ और उसने अपना दुशाला उतार कर देते हुए कहा, "लीजिए, इसको ओढ लीजिए, अन्यथा कानों में सर्दी पहुँचेगी।"

"नहीं-नहीं, मुझे सर्दी नहीं लगती।" नरबाधा ने उत्तर देते हुए कहा, "आप चलिए न !"

यह कदापि नहीं हो सकता, अगर आप दुशाले को न ओढोगी, तो मैं एक कदम भी आगे की ओर नहीं बढाऊँगा।" वीरेन्द्र ने दृढता से कहा।

"मेरे बाबा ने अन्य के प्रयोग किये कपडों का प्रयोग करना मना किया है, वीरेन्द्रबाबू !"

वीरेन्द्र ने कहा "आप इस शाल को ओढ कर उनकी आज्ञा का उल्लघन नहीं करोगी कारण यह शाल बिल्कुल नया है। मैंने इसको आज ही निकाला है। लीजिए, इसको ओढ लीजिए।"

नरबाधा ने शाल को लेकर ओढ लिया और कहने लगी, "ओह ! अब तो सर्दी की नानी मर गई (नौ दो ग्यारह हो गई)।" यह कह कर हँसने लगी।

शाल को ओढने से नरबाधा का रूप खिल उठा और वीरेन्द्र चन्द्रमा की चाँदनी में उसके रूप-लावण्य को देखता हुआ बोला, "ओह ! आप तो बहुत सुन्दर प्रतीत होती हैं। मैंने

पहले कभी विश्वास नहीं किया था कि नारी में इतना सौन्दर्य होता है, किन्तु अब यह जानकर में अपनी भूल सहर्ष स्वीकार करता हूँ।" नरबाधा इस बात को सुनकर हँसती हुई बोली, "सचमुच, मैं इतनी सुन्दर लगती हूँ ? मैंने भी कई बार बहुतों के मुख से सौन्दर्य की प्रशसा सुनी है, किन्तु आपके समान मधुर शब्द किसी के नहीं थे।" इतना कहकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगी।

वीरेन्द्र निरुत्तर रहा। उसके दिल में न जाने कौनसी आग सुलगने लग गई थी।

फिर न जाने क्या सोचते हुए नरबाधा ने कहा, "वीरेन्द्रबाबू ! मेरा एक अनुरोध है। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे ?"

वीरेन्द्र का सुनहरा स्वप्न मानो भग होगया और उसने चौंककर कहाः "कहिए, क्या बात है ?"

"आप मुझे आदरसूचक शब्दों में न पुकारा करें। आप देखते हो, मेरी आयु आपसे कितनी छोटी है। अत आप मुझे तुम कहकर पुकारा करें।" नरबाधा ने विनीत स्वर में कहा।

"हाँ, अब मैं तुम कहकर पुकारा करूँगा। तुम क्या कह रही थी, नरबाधा ?"

मैं कह रही थी, "अब देर करने से काम न चलेगा, अभी दवाखाना काफी दूर है।"

वीरेन्द्र ने घडी की ओर देखा, आधी रात बीत चुकी थी। वह मन ही मन विचार करने लगा कि मैं कितना मूर्ख हूँ कि एक युवती के साथ आधी रात बीतने पर भी स्वतन्त्रतापूर्वक बातें करने लगा हूँ। नरबाधा भी मौन धारण किये चले रही थी। इतने में वे बाजार पहुँच गए और दवा लेकर लौटने लगे।

□□□

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रास्ते में बहुत देर तक वीरेन्द्र और नरबाधा मौन रहे। नरबाधा वार्तालाप प्रारम्भ करना चाहती थी, अपने अन्तस्तल के उद्‌गारों को व्यक्त करना चाहती थी, किन्तु वीरेन्द्र को चुप देखकर वह चुप रही। आखिरकार उसकी मौन असह्य हो गई और उसने स्वय ही बात छेडी, "क्यों, क्या सोच रहे हो, वीरेन्द्र बाबू ?"

"कुछ नहीं, यही सोच-विचार कर रहा था कि तुम इतनी निडर कैसे बन गई हो? कुछ समझ में नहीं आता।"

"अच्छा, आप बतलाइये तो सही, क्या आप सुमनकुमारी की बात सोच रहे हो ?"

वीरेन्द्र को एक धक्का-सा लगा। वह बोल उठा, "तुम कितनी निर्दयी और अत्याचारिणी हो कि न जाने कब किसके लिए तुम्हारे मुख से क्या निकल पडता है, कोई पता नहीं। कितने विस्मय की बात है ?"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है वीरेन्द्रबाबू? यह मेरी भावना नहीं, सुमन के हृदय की उद्विग्नता इस प्रकार से आपको विह्वल कर रही है। आप इतनी छोटी-सी बात पर नाराज हो गए। किन्तु मैं अपनी ऑखों से लख रही हूँ, उसे अस्वीकार करना मेरे सामर्थ्य से बाहर है।'

"तुम क्या कह रही हो नरबाधा ? अच्छा, तनिक अपने पैर जल्दी-जल्दी बढाओ।"

नरबाधा काफी देर तक मौन धारण किए रही तो वीरेन्द्र ने पूछा "क्या सोच रही हो, नरबाधा ?"

वही सुमन की बात। मैंने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा था कि जब मैं आपको बुलाने के लिए आई थी, तो सुमन का चेहरा फक् हो गया था। यह नारी जाति का स्वभाव है कि वह प्रेम के निरर्थक बधन में पडकर अपने-आपको रसातल में ले जाती है और सर्वनाश कर लेती है।

इस प्रकार की बात एक लावण्यमयी नारी के मुख से सुनकर वीरेन्द्र विचार विमूढ-सा हो गया। उसने सोचा, "इसकी बात में कितना नारी की मन स्थिति का विश्लेषण भरा पडा है, सो आश्चर्य की बात है। इस प्रकार से वीरेन्द्र इस बात के प्रति भिनता और अनभिनता के बारे में कुछ कह नहीं सका।

वीरेन्द्र को निस्तब्ध देखकर नरबाधा ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "जब पुरुष कचन और कामिनी के वशीभूत होकर यह कहने लगता है कि मैं तुम्हारे से प्यार करता हूँ तुम्हारी आराधना करता हूँ तुम्हारी एक मुस्कान पर विश्व की सबसे प्रिय वस्तु त्यागने के लिए तैयार हूँ, उस समय मुझे कैसा अनुभव होता है, वीरेन्द्रबाबू, सुनेंगे ?" कहकर वीरेन्द्र के मुँह की ओर ताकती हुई वह बोली, "मुये ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय वह अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए एक विषैले साँप की नाईं नारी को डसने के लिए आता है। ऐसे समय में मेरी स्थिति विचित्र-सी हो जाती है और मैं इसको सहन नहीं कर सकती, शरीर में रोमाच हो जाता है।" फिर वह थू-थू करके पुरुष के प्रति घृणा प्रदर्शित करती हुई थूकने लगी।

वीरेन्द्र उसकी इस प्रकार की बातें सुनकर चकित हो गया। उसके पैर जहाँ थे, वहीं रह गये। एक कदम भी आगे की ओर अग्रसर न हो सके।

नरबाधा कुछ आगे निकल चुकी थी। लेकिन जब साथ में कोई आहट नहीं सुनी तो पीछे मुडकर देखा। वीरेन्द्रबाबू पीछे खडे थे। वह पास आकर बोली, "यह क्या ? आपको क्या हो गया, वीरेन्द्रबाबू ?"

वीरेन्द्र ने धीरे-धीरे सम्हलते हुए कहा, "चलो, मैं चल तो रहा हूँ।" किन्तु नरबाधा ने, "नहीं, आप थोडी देर बैठकर विश्राम कर लीजिए !" कहकर वीरेन्द्र को बैठने के लिए बाध्य कर दिया। चद ही मिनट बैठने के पश्चात् वीरेन्द्र ने कहा, "चलो नरबाधा, अब मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ।"

"मैं यह नहीं जानती थी कि आप हृदय से इतने कमजोर हैं।" कहकर नरबाधा तिरछी निगाह से हँस पडी और फिर बोली, ' कितने मिनटों का तो परिचय ही हे कि मैं आपकी सब बातें जान सकूँ ?"

वीरेन्द्र की आँखों के आगे का अन्धकार अब हट चुका था, अत उसने पूछा, "नरबाधा, क्या यह शिक्षा भी तुमने अपने प्यारे पिता से ग्रहण की है ?"

"कौनसी शिक्षा, वीरेन्द्रबाबू ?"

"यही पुरुष से घृणा करने की शिक्षा।"

' मेरे पिता ने मुझे यह शिक्षा नहीं दी है। मेरा यह पूर्ण विश्वास भी है कि कोई भी

पिता अपनी पुत्री को इस प्रकार की शिक्षा देने में राजी नहीं होगा।" कहकर नरबाधा तनिक रुकी और फिर बोलना प्रारम्भ किया, "मैं बिल्कुल ठीक हिसाब लगा कर तो नहीं बता सकती, किन्तु मुझे याद है कि लगभग सत्तर व्यक्ति मेरे पिता के पास मेरी शादी के लिए आए और मुझे देखकर उन्होंने मेरे सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशसा की, किन्तु धन-सम्पत्ति का सवाल आते ही रूप-लावण्य को उसके समक्ष हार खानी पडी और वे चले गये। अत प्रतिदिन ऐसी घटनाओं के होने के कारण पुरुष के प्रति मेरा द्वेष होना स्वाभाविक हो गया और मैं पुरुष-द्वेषी बन गई। आप भी तो नारी की अवज्ञा के सिद्धान्तों को मानने वाले हो, अत आप तो भलीभाँति इसको समझ सकते हो। मेरे पूज्य गुरुवर ने भी ऐसा ही कहा था।"

वीरेन्द्र ने कहा, "गुरु ! तुम्हारा गुरु कौन है, नरबाधा ?"

"जिस समय हम पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में थे, उस समय मेरा उनसे साक्षात्कार हुआ था। उनका कुटुम्ब उन्हें त्याग चुका था। उनका काम दूसरों की सेवा का कार्य करना था। यदि कोई बीमार पड जाता, अथवा कहीं स्त्रियों पर अत्याचार किया जाता तो वे सहायतार्थ तुरन्त जाकर हाजिर होते। इस प्रकार से उन्होंने सारा जीवन जन-सेवा में अर्पण कर रखा था। वे कई बार जेल भी चले गए थे। उनके साथ मैं भी जेल में रही थी।"

"तुम जेल भी हो आई हो, नरबाधा ?"

"मैं क्यों दूसरी भी सैकडों स्त्रियाँ हो आई हैं। क्या आपने अभी सुना नहीं ?"

"किन्तु तुम ? ओर यह कहानी तो तुम्हारे पिता और अन्य किसी ने भी तो बताई नहीं।"

"आप इसे नहीं समझ सके, वीरेन्द्रबाबू ? आप भी भला बताइये कि कोई बाप अपनी पुत्री की इस प्रकार की जेलयात्रा और अन्य दुर्घटनाओं का हाल किसी दूसरे को बता सकता है ?"

"यह तो ठीक ही है।"

चद मिनटों तक दोनों मौन रहे। इसी वक्त नरबाधा न जाने क्यों खिलखिला कर अचानक हँस पडी। उस हँसी को सुनकर ब्रह्मचारी सघ का सदस्य वीरेन्द्र चचल हो उठा। उसके चेहरे की ओर देखकर नरबाधा फिर प्रसन्नता के मारे मुस्कराने लगी और अपनी साडी में से पिस्तौल निकाल कर बोली "वीरेन्द्रबाबू ! यह क्या है ?

वीरेन्द्र ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और नरबाधा से कहा, "तुम अपने रास्ते चलो। फिर सोच कर उसने कहा "मैंने इसको तुम्हारे कमरे में खूँटी पर लटकी हुई देखा था। क्या इसमें कोइ रहस्य है ?"

"नहीं। मेरे पिता पश्चिमी सीमाप्रान्त की सेना में नौकर थे, अत वहीं उन्होंने इसको लाइसेन्स लेकर खरीदा है। रास्ते चलते समय रूप के शत्रु कम नहीं मिला करते अत में बाहर जाते वक्त इसको साथ ले लेती हूँ। मैंने पुस्तकों में भी यही पढा है कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ बाहर जाते वक्त अपने साथ रक्षार्थ शस्त्र ले जाया करती थीं।" कहकर उसने मौन धारण कर लिया। किन्तु चद ही क्षणों में उसने अकस्मात प्रश्न किया, "वीरेन्द्रबाबू ! क्या आप किसी से प्रेम नहीं करते ?"

वीरेन्द्र इस प्रश्न को सुनकर असमजस में पड गया और मौन धारण किए रहा। इस पर नरबाधा फिर बोल उठी, "हाँ, इस प्रश्न का उत्तर देने से ब्रह्मचारी सघ के सदस्य के लिए एक आपत्ति की बात हो जायेगी, अत उपयुक्त यही है कि आप जिससे प्यार का सम्बन्ध रखते हैं, उसी के साथ विवाह कर लीजिए और फिजूल में मृग-मरीचिका के चक्र में क्यों पडते हो ?"

वीरेन्द्र के पुरुष-हृदय ने अब तक तो नरवाधा के बेन-शरों को सहा, लेकिन अब उसकी बातें अपनी सीमा को पार कर रही थी, अत वीरेन्द्र ने कहा, "नरवाधा ! दूसरे को नीचा समझना और अपने-आपको वडा समझना अच्छा नहीं है। मैं तुम्हारे से घृणा करता हूँ।" वीरेन्द्र के शब्दों में इस बार दृढता और कठोरता थी।

वीरेन्द्र बी बात सुन करके नरबाधा हँस पडी और कहने लगी, "आप मेरे से घृणा करते हैं ? अपने दिल से पूछिये।" ओर फिर बोली, "अच्छा चलिए ! घर आ गया। पर, वहाँ कौन खडे हैं ? शरणानन्द सन्तरी और सुमन।"

वीरेन्द्र ने देखा कि नरबाधा के मकान का दरवाजा खुला है और नरबाधा के हँसने की आवाज सुनकर सुमन और शरणानन्द इधर ही आ रहे हैं। वे दोनों नरबाधा के घर के दरवाजे से बाहर निकल चुके थे। वीरेन्द्र ने सोचा कि इस रात्रि में एक नवयौवना तरुणी के साथ चलना, घरवालों की उपेक्षा करना और फिर इस प्रकार से खिलखिला करके हँसना, मेरे लिए कितनी लज्जा की वात है ? इस प्रकार की कल्पना करते-करते ही वीरेन्द्र का मस्तक नत हो गया।

नरवाधा ने कहा, "चलिए, पहले बाबा को देख लीजिए।" उसके स्वर में आग्रह और आशका का भाव झलक रहा था। वीरेन्द्र के हृदय की घृणा, जो उस नारी के प्रति थी, न जाने कहाँ लुप्त हो गई और वह टस से मस नहीं हुआ। सुमन भी इसी प्रकार से मौन खडी थी।

नरवाधा वीरेन्द्र से कहकर पिता की स्थिति देखने के लिए अन्दर चली गई और तुरन्त ही लौटकर बोली 'यहाँ क्यों खडे हैं वीरेन्द्रबाबू ? अन्दर आइये !"

किन्तु वीरेन्द्र अपनी जगह से नहीं हिला। यह स्थिति देखकर नरबाधा ने सुमन से कहा "मैं अभी वीरेन्द्र बाबू से यही कह रही थी कि आप भी यहाँ पधारने का कष्ट करेंगी।

सुमन ने उत्तर दिया, 'आप जानती थी कि मैं यहाँ आऊँगी ? अच्छा, मैं समझी। फिर क्षणभर मौन धारण करने के पश्चात् वह बोली, ' मैं व्यर्थ ही रातभर यह सोचती रही कि न जाने आपको मेरी सेवा की आवश्यकता पड जाये। पर मैंने बडी भूल की।"

नरबाधा इस व्यग्य को न समझ सकी और वीरेन्द्र को कहा, "क्या आप यहीं खडे रहेंगे या अन्दर आने का कष्ट कर बावा को देखेंगे ?" इतना कहने से वीरेन्द्र का होश आया और वह सुरेन्द्रसिह को देखने के लिए अन्दर चला गया।

□□□

बारहवाँ परिच्छेद

दरवाजे की देहरी पर खडे होकर वीरेन्द्र ने घूमकर देखा और सुमन को सम्बोधित करके कहा, "आप इतनी रात में व्यर्थ ही यहाँ आईं। रोग सक्रामक है। यहाँ आपके रुकने की आवश्यकता नहीं। आप चलिए, मैं अभी आया।"

"मैं तो इसी गाँव की लडकी हूँ, वीरेन्द्रबाबू।" सुमन ने जवाब दिया।

नरबाधा पास ही खडी थी। उसने सुमन से कहा, "वीरेन्द्रबाबू सच ही कह रहे हैं। आपका यहाँ आना उचित नहीं हुआ। आपका स्वागत करने की क्षमता मुझमें नहीं है।"

"नरबाधा, मेरे स्वागत की आवश्यकता नहीं है। मैं भाई के सग आई हूँ और उन्हीं के सग चली जाऊँगी।"

वीरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा, "भैया आये हैं ? कहाँ हें ?"

सुमन ने दूसरी ओर अगुली से सकेत करते हुए कहा, "पहले आप सुरेन्द्र ठाकुर को देखिए और इसके बाद भैया से बातचीत कीजिएगा।" और उसके भाई जहाँ थे, उस ओर रवाना हो गई और वीरेन्द्र रोगी को देखने अन्दर चला गया।

नरबाधा ने सुना, उमरावसिह आये हैं और उसने एक आराम की साँस ली। अभी तक उसने यही सोच रखा कि सुमन अकेली आई है और इसी विचार ने ही उसके मन को अत्यधिक कष्ट पहुँचाया था। वह भी दोडी हुई उमरावसिह के पास पहुँची और उनकी पदरज सिर पर लगाती हुई बोली, ' विपत्ति के समय मेरी जैसी दरिद्राओं के पास आपको इसी प्रकार खडा रहना चाहिए। आपको कितना कष्ट हुआ है आज।"

उमरावसिह ने उत्तर दिया, ' मेरे कारण परेशान मत हो नरबाधा ! तुम अन्दर जाओ। सम्भवत डॉक्टर को किसी चीज की आवश्यकता पडे !" और फिर बहिन की ओर देखते हुए कहा ' मैंने पहले ही कहा था सुमन, तुमसे यह सब देखा-सुना न जायेगा। चलो, तुम्हें घर पहुँचवा

दूँ। अब सवेरा भी हो चला है। पालकी के साथ त्रिपुण्डधारी और शरणानन्द चले जायेंगे ओर जब पालकी वापिस आयेगी तो मैं भी आ जाऊँगा।" और बाहर आकर उन्होंने सुमन के जाने की व्यवस्था कर दी। सुमन कुछ कहे बिना पालकी में बैठ गई। पर वही जान सकती थी कि उसका हृदय उस समय किस चिन्ता में था।

जब नरबाधा अन्दर पहुँची तो उसे मालूम हुआ कि पिताजी के सिरहाने उसके गुरु जिनकी चर्चा अभी कुछ देर पहले वीरेन्द्र से की थी, बैठे हैं। नरबाधा को देखकर उसने कहा, "तुमने रातभर से कुछ नहीं खाया है, जाकर अब कुछ भोजन कर लो, नरबाधा।" दूसरा कौन उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर सकता है ? उसके गुरु का नाम सत्यपाल था। उसने नरबाधा का सूखा चेहरा देखते ही जान लिया था कि वह रातभर की भूखी है।

नरबाधा ने देखा कि वीरेन्द्र इन्जेक्शन (सूई) देने की तैयारी बरत रहा है। सत्यपाल ने स्टोव पर पानी गरम करना प्रारम्भ कर दिया। नरबाधा ने उसे निरख कर कहा, "आप हटो, मैं सब काम ठीक किये देती हूँ।" सत्यपाल ने क्षणभर नरबाधा की ओर देखा और फिर अपनी पुरानी जगह जाकर बैठ गया।

वीरेन्द्र ने इन्जेक्शन (सुई) देने के बाद मरीज की नाडी देखी और सत्यपाल गिलास में दवा डालने लगा। गिलास में दवा लेकर नरबाधा ने भैरवी राग में बोलना शुरू किया, "बाबा ! बाबा !"

'क्या है, नरबाधा बेटी !"

"थोडा-सा मुँह खोल दो बाबा ! दवा पिला दूँ।"

रोगी के मुँह से हँसी निकल पडी। उसने कहा, 'अब भी दवा ! पर मेरा खेल तो खत्म हो चला हे, बेटी !"

"ऐसी बातें मत कहो, बाबा ! मैं फिर किसके पास रहूँगी ?" और नरबाधा जोर से रो पडी।

उमरावसिंह ने दर्दभरी आवाज में सांत्वना दी, "घबराओ मत, नरबाधा ! बाबा अभी अच्छे हो जायेंगे।"

रोगी के चेहरे पर फिर कुछ मुस्कराहट खिल पडी। उसने कहा "अच्छा, दवा पिला दे बेटी !

दवा पीने के बाद रोगी ने वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की ओर देखा और उन्हें पहचानने की कोशिश की। उमरावसिंह को देखकर उसने कहा, "मैं स्वप्न देख रहा हूँ, क्या ?

उमरावसिह ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "मैं आपको देखने आया हूँ। वीरेन्द्र भी आया है। आप चिन्तित न हों।"

सुरेन्द्र ठाकुर के चेहरे पर अविश्वास की हल्की रेखा दौड़ गयी। उसने कहा, "अब भी निश्चिन्तता ?" और माथा ठोकते हुए फिर बोला, "उमरावसिह भैया, मरने की इच्छा नहीं होती। यही सोचता हूँ कि इस अभागी को किसके सुपुर्द करूँगा ?"

"वीरेन्द्र, इनसे कह दो कि फिजूल की वकवास न करें, इसी में भला है।" उमरावसिह ने वीरेन्द्र के कान में कानाफूसी की।

"नहीं भैया, ये जो चाहें इन्हें कहने दीजिए। इससे हानि की अपेक्षा लाभ अधिक होगा।" वीरेन्द्र ने जवाब दिया। उसके कथन का अर्थ उमरावसिह ने जान लिया। सुरेन्द्र ठाकुर ने भी ये शब्द सुन लिये थे। उन्होंने कहा, "मैं अब निष्फिकर हूँ, वीरेन्द्रबाबू।" और फिर उमरावसिह को देखकर उन्होंने कहा, "आप बैठ जायँ तो जो-कुछ कहना है, आपके समक्ष कहकर ही प्राण त्यागूँ। मैं जानता हूँ कि इस बार लाख प्रयत्न करने पर भी मैं किसी से बात न कह सकूँगा।" और फिर मरीज ने पुकारा, "नरबाधा !"

"क्या है, बाबा ?"

"तुम्हारी मौसी कहाँ हैं ?"

"उन्हें भी काफी तेज ज्वर आ गया है और बिना खबर के उस कमरे में पडी हैं।"

"जमींदार साहब के बैठने की व्यवस्था करो, बेटी !" पर नरबाधा के कुछ लाने के पहले ही उमरावसिह पास ही पडी एक शीतल पत्थर की पाटी पर बैठ गये। इसके बाद सुरेन्द्र ठाकुर ने वीरेन्द्र की ओर देखा। वीरेन्द्र ने उस दृष्टि का अर्थ समझ लिया और उमरावसिह के साथ ही उस शीतल पाटी पर बैठ गया।

"सत्यपाल कहाँ है ?" कहकर मरीज चारों तरफ देखने लगा। सत्यपाल ने उनके ऊपर झुककर कहा, "मैं यहीं हूँ, बाबा !"

वीरेन्द्रबाबू ! बाबा को अब दवा नहीं दीजिएगा क्या ?" नरबाधा ने उत्सुक नयनों से देखकर पूछा।

"देनी तो है। पर पहले सुन लिया जाय, बाबा क्या कहते हैं ?"

तत्पश्चात् मरीज ने सारी शक्ति केन्द्रित करके जोर से अपने जीवन की सारी कहानी सुना डाली और आखिर में कहा, "नरबाधा को मैंने बहुत-सी शिक्षाएँ दी हैं और अब वह इस योग्य हो गई है कि अपने पथ का निर्माण स्वय कर ले। अब यदि नरबाधा शादी करले, तो मुझे शान्ति होगी। मेरी आत्मा " इसके बाद रोगी का कण्ठ अवरुद्ध होगया।

उसके जीवन की लीला का अन्त हो गया। शायद, उसे अपनी जीवन-कथा सुनाने के लिए ही, पुन एक बार सज्ञा प्राप्त हुई थी।

वीरेन्द्र दर्दभरी आवाज में चिल्ला उठा, "सब समाप्त हो गया।" और नरबाधा, "बाबा-बाबा !" कहकर पिता के शव पर लोटने लगी। नरबाधा की मौसी कब उठकर चली आई, इसका किसी को पता नहीं। उन्होंने आकर नरबाधा को उठाया।

उमरावसिह धीरे-धीरे दरवाजे पर आये। वहाँ त्रिपुण्डधारी और शरणानन्द उनका इन्तजार कर ही रहे थे। उन्हें देखते ही ठाकुर साहब ने कहा, "त्रिपुण्डधारी, सुरेन्द्र ठाकुर अब नहीं रहे। अन्त्येष्टि सस्कार का प्रबन्ध करो।"

उस समय आकाश से शरदऋतु के प्रभाकर की हल्की धूप की रेखा और ठाकुर साहब की आँखों से मोती पृथ्वी पर पडते हुए दिखाई देते थे।

तेरहवाँ परिच्छेद

जिस रात को सुमन नरबाधा के घर से नाराज होकर आई थी उसी रात वहाँ जाने के पहले शरणानद सतरी ने आकर उसे बताया था कि नरबाधा और वीरेन्द्र - दोनों रात को बाजार गये हैं। यह समाचार सुनकर सुमन का हृदय इतना अशान्त हो गया कि उसका भाई भी उसे शान्त न कर सका।

शरणानद ने उसे सूचना भी दी थी कि सुरेन्द्र ठाकुर मर गये हैं और नरबाधा की मौसी ज्वर के कारण बेहोश पडी हैं। इस समाचार ने ठाकुर उमरावसिह को इतना विचलित कर दिया था कि असम्भव भी सम्भव हो गया था। इस प्राणहारी शीत में जिस कारण दोनों बाजार जाने के लिए बाध्य हुए थे, उसकी कल्पना मात्र से ही सुमन की आँखों से गगा की धारा बहने लगी। जिनके परम शोकाकुल अवस्था में लौटने की प्रतीक्षा में सुमन उस रात नरबाधा के दरवाजे पर खडी थी, उन्हें ही उद्दण्डतापूर्वक हँसते हुए देखकर और वे जो बातें कर रहे थे, उन्हें सुनकर सुमन को अपने कानों और आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

रूप के सामने वीरेन्द्र का आत्मसमर्पण चाहे किसी के लिए साधारण हो, पर सुमन के लिए एक असाधारण बात थी। इससे सुमन इतनी बेचैन हुई कि उसे एक प्रकार से वैराग्य-सा उत्पन्न होने लगा इस सम्पूर्ण ससार की चेतन व अचेतन वस्तुओं से। उस दिन सुबह घर आकर पक्षियों की प्रभाती के साथ ही साथ वह अपने भाई के चित्र के सामने खडी हुई और हाथ जोड कर सगीतपूर्ण मधुर रागिनी में कहा था, "भैया, तुम्हारे हृदय के सदृश मेरा हृदय भी दृढ हो, यही आशीर्वाद मुझे दो।" और उस चित्र को प्रणाम किया था।

कुछ समय बीतने पर उसे मालूम हुआ कि न तो भैया, न वीरेन्द्र, न त्रिपुण्डधारी और न शरणानद ही लौटे हैं, तो उसके हृदय में सभी कल्पनाओं ने भीड लगानी शुरू कर दी। उसे जब स्मरण आया कि अपने अस्वस्थ भाई को इतनी रात में किस तरह जबरदस्ती उठाकर अपने सग ले गई थी, उस सयम उसे अत्यधिक लज्जा का अनुभव हुआ।

उसने रसोईघर में जाकर देखा कि शकर की माँ तरुण को खाना खिलाकर स्वय वहीं लेटी हुई है। उसने तरुण को कपडे पहिनाकर मास्टर के पास पढने के लिए भेज दिया और स्वय अपने कमरे की खिडकी पर खडी होकर, जितनी दूर उसकी दृष्टि जा सकती थी, उतनी दूर तक देखने लगी।

उसे मालूम नहीं, कब तक वह इस तरह खडी रही। उसने अचानक किसी के जूतों की आवाज सुनी तो बाहर आकर देखा कि उसके भाई हैं। ठाकुर साहब ने वीरेन्द्र को देखकर कहा, "वीरेन्द्र, जरा मेरे कमरे में आना, कुछ बातें करनी हैं।"

"मुझे माफ कर दो भैया ! थकान के मारे मेरी आँखें मुँदी जा रही हैं। मैं जरा सोऊँगा !"

सुमन ने वीरेन्द्र की ओर देखकर कहा, "बहुत खूब ! सोइएगा ? आप भले ही भूल जायँ कि कल से आपने कुछ नहीं खाया है पर " सुमन पलभर रुकी और फिर बोली, "अच्छा आप भैया के कमरे में पाँच मिनट बैठिए, मैं अभी आती हूँ।" और तेजी के साथ चली गई।

ठाकुर साहब ने मुस्कराते हुए कहा, "वीरेन्द्र, किसी भी तरह तुम्हारा पिण्ड नहीं छूट सकता।"

वीरेन्द्र ने भी धीरे-से मुस्करा कर कहा, "यही तो मैं भी देखता हूँ, भैया ! अच्छा, चलो।"

ठाकुर साहब ने, एक शॉल ओढकर कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "यह लडकी खूब ही आश्चर्यजनक है। वीरेन्द्र ! मैं तो मुग्ध हो गया।"

वीरेन्द्र ने कहा, "तुम कब से उसे इस रूप में जानते हो भैया ! हाँ, तो उसके कपडे भी तो वापिस करने होंगे ?"

"वह तो करने ही होंगे। हाँ, तुम पूछ रहे थे कि मैं कबसे इसे इस रूप में जानता हूँ ? जो निरखना चाहता है वह कभी भी रहस्य को जानने से वंचित नहीं रह सकता, वीरेन्द्र। और मेरा तो उससे कोई आकस्मिक परिचय हुआ नहीं।"

"सभव है।" वीरेन्द्र ने कहा और नींद आने के कारण अपनी दोनों आँखें मूँदने लगा।

उसी समय सुमन शकर की माता के साथ खाना लेकर प्रस्तुत हुई और वहीं जमीन पर आसन बिछा, थाल रखवा दिया और वीरेन्द्र से कहा, "चलिए ! इस समय सोने से कैसे काम चलेगा ?" और फिर अपने भाई से बोली ' भैया, आप भी चलकर खाना खा लो। पास के कमरे में सब तैयार हैं।"

वीरेन्द्र के भोजन प्रारम्भ करने पर सुमन ने पूछा, "भैया, सुरेन्द्र ठाकुर का क्या हाल है ?"

ठाकुर साहब के जवाब देने से पहले ही वीरेन्द्र ने कहा, "वे अब ससार के सुखों-दुखों से अलग हैं। उनके सम्बन्ध में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।"

"अच्छा ! तभी इतनी देर हुई, अब समझी। और भैया, आप भी वहीं थे, इसीलिए सब व्यवस्था ठीक-ठाक हुई होगी। पर भैया, नरबाधा के लिए तो यह आघात असह्य होगा।"

इस बार वीरेन्द्र ने ही उत्तर दिया, "उसे शोक के कारण बेहोश देखकर मैंने तो यही सोचा था कि अब वह भी समाप्त हो जायेगी, पर उसकी प्रत्येक बात आश्चर्यजनक है। जिस प्रकार वह शोकाकुल होने में चतुर है, इसी प्रकार प्रसन्नचित्त होने में भी। क्यों भैया ?"

वीरेन्द्र की बात सुनकर सुमन की आकृति कठोर हो उठी।

"तुम क्या कह रहे हो, वीरेन्द्र ? मुझे तो ऐसी कोई बात नजर नहीं आती।"

वीरेन्द्र ने भोजन करते-करते जबरदस्ती मुँदती आँखों को खोलकर कहा, "तुम लोग तो मृत्युलोक के प्राणी हो न भैया ! तुम लोग जो-कुछ देखते हो, हम लोगों के विचार से वह एक साधारण व्यक्ति का व्यामोह मात्र है। अन्यथा आज जो काण्ड होने वाला था, उसका आखिर कहाँ होता, कहा नहीं जा सकता।"

ठाकुर साहब ने कहा, "तुम व्यासजी की बात कहते हो न ! यह तो सभी गाँवों में होता है। किन्तु "

वीरेन्द्र ने बीच में टोकते हुए कहा, "मैं तो यही सोच रहा हूँ कि सभी गाँवों में ऐसी बातें होती हैं पर सभी गाँवों में ठाकुर उमरावसिह तो नहीं रहते। फिर मरने वालों को स्वर्ग कैसे प्राप्त हो ?"

सुमन की समझ में कुछ नहीं बैठा। उसने अपने भाई की ओर दृष्टिपात किया कि भैया ने कहा, "व्यासजी ने गुटबन्दी की थी। उनका कहना था कि जो नरबाधा जैसी आकर्षक सुन्दरी को अविवाहित रख सकता है उसके शव को छूना भी महापाप है।"

"यही तो समस्या है, भेया ! कुमारी कन्या की उम्र प्रकृति के अनुसार दिन पर दिन अधिक होती जाने पर भी तो कोई उसकी सहायता के लिए आगे नहीं आता। यदि यह कहूँ कि मैं इसका कारण नहीं जानता तो वह झूठ होगा।" कहकर वीरेन्द्र मुस्कराने लगा।

"तब, कहो न !"

"तुम नहीं समय सकते भैया ! व्यासजी ने इस अहकारी लडकी पर बडों का आदर न करने का जो अभियोग लगाया हे उसी में सारा रहस्य छिपा है। मैं जिस समय त्रिपुण्डधारी के साथ उनके यहाँ गया, उस समय व्यवहार ऐसा था मानो मैं उनका कोई आत्मीय हूँ। मुझे

देखते ही उन्होंने कहा - इसने अहकारवश मेरी बातों का जवाब तक नहीं दिया। बाप के मरने के बाद भी अभी तक मेरे पास नहीं आई। वह रूपसी है। मैं भी जिस वक्त लखनऊ में था, इससे ऊँचे दर्जे की रूपसियों को मैंने देखा था। इस पर मैंने कहा कि क्या केवल लडकी के अहकार के कारण बाप की अन्त्येष्टि न की जायेगी ? उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि वह तुम्हें बताने की जरूरत नहीं।"

सुमन ने पूछा, "फिर, गुटबन्दी टूटी कैसे ?"

"केवल भैया की उपस्थिति के कारण। उन्हें पता नहीं था कि भैया वहाँ सशरीर उपस्थित हैं। भैया को देखते ही उनकी सारी वाक्शक्ति न जाने कहाँ चली गई। उस समय उनका व्यवहार देखकर मैं सोचने लगा कि किसे धन्यवाद दूँ ?"

ठाकुर साहब खिलखिला पडे। सुमन ने श्रद्धापूर्वक अपने भाई की ओर देखकर कहा, "भैया, आपको देरी हो रही है, जाकर भोजन कर लो।"

ठाकुर साहब के बाहर जाने पर वीरेन्द्र ने कहा, "मालूम होता है कि भैया जादू जानते हैं। भैया को देखते ही व्यासजी की डींग कहाँ गायब हो गई, कुछ समझ में नहीं आया। मुझे आश्चर्य हुआ कि किस नाटकीय रूप से उनका 'नहीं', 'हाँ' के रूप में बदल गई।"

भैया के कमरे से बाहर जाने के साथ ही साथ सुमन की मुद्रा भी कठोर हो गई। रात की घटना को भूलने का प्रयत्न करने पर भी वह सफल न हुई। वीरेन्द्र को जब उसकी ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। उसने, "आप मेरी बात सुन रही हैं ?" यह कहकर सिर झुका लिया।

सुमन ने देखा कि उसके व्यवहार के कारण वीरेन्द्र के भोजन में बाधा पड रही है, तो उसने कहा, "मैं सुन तो रही हूँ। आप कहिए।"

बाहर शकर की माँ को ओर परोसने के लिए भोजन सामग्री लिए खडी देखकर सुमन ने कहा, "ले आओ अन्दर।"

वीरेन्द्र ने विरोध करते हुए कहा, "नहीं मैं अब कुछ नहीं लूँगा। मुये नींद आ रही है। मैं अब कुछ भी नहीं खा सकता।"

"नींद तो ऑख में घुमड रही है। उसके कारण पेट को दण्ड देना कहाँ का न्याय है ?" कहकर सुमन ने थोडा-सा और परोस दिया।

वीरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "यदि ईश्वर ने नारी को इतना स्नेहशील नहीं बनाया होता तो पुरुष - वह खाना न मिलने के कारण ही मर जाता।"

"पर आपके मुँह से यह वाक्य अच्छा नहीं लगता, वीरेन्द्रबाबू !' सुमन ने उत्तर दिया।

"क्यों ?" कहकर वीरेन्द्र झुक गया।

"मैं समझ गई। आप यह भूल ही गये थे कि आप ब्रह्मचारी सघ के सदस्य हैं और तभी ये शब्द आपके मुँह से निकल पडे। पर, ऐसी वडी गलती क्यों हुई ? यही समझ में नहीं आता।"

वीरेन्द्र सुमन का यह प्रश्न सुनकर इतना लज्जित था कि उसकी सिर उठाकर ऊपर को नजर डालने की हिम्मत नहीं थी। सुमन ने फिर कहा, "यदि भूल मान भी ली जाय तो इसके बाद लज्जित होने की कोई बात ही नहीं। किन्तु यदि सचमुच आपके विचारों में परिवर्तन हो गया है तो भी उसे स्वीकार कर लेने में मैं लज्जा की कोई बात नहीं समझती।" और वह यह कहकर अचानक कमरे से बाहर चली गई।

इसके साथ ही वीरेन्द्र का खाना बन्द हो गया। कल रात नरबाधा ने अच्छी तरह घोषणा कर दी थी कि वह ब्रह्मचारी सघ की सदस्यता के अयोग्य है और इस घोषणा से वीरेन्द्र को जो दु ख हुआ, उसे कहने की आवश्यकता नहीं। और आज सुमन की कडवी बातों में कठोर सत्य छिपा था। वीरेन्द्र उठ ही रहा था कि इतने में सुमन आ गई और बोली, "नहीं, आप उठ नहीं सकते। मैंने गलती की है, मुझे दण्ड दीजिए। पर भोजन न कर, बहादुरी न दिखाने दूँगी।" और खिलखिलाकर हँस पडी।

वीरेन्द्र ने बचा हुआ भोजन समाप्त कर हाथ-मुँह धोकर कहा,"लीजिए, आपको एक बात बताता हूँ। यदि सब लोगों को मालूम न पडेगा तो कोई भी उस पर टीका टिप्पणी न लिख सकेगा।" इसके बाद क्षणभर चुप रहा और फिर बोला, "अच्छा, मैं अब नींद नहीं रोक पा रहा हूँ। मुझे क्षमा कीजिए।" और धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया।

सुमन चुपचाप थी। वीरेन्द्र जिस ओर जा रहा था, उसी ओर देखती हुई न जाने वह क्या सोच रही थी। जब उसके भाई ने कमरे में प्रवेश किया उस समय उसकी दोनों आँखें डबडबा रही थीं और वह मौन थी। सुमन को अपने भाई के आगमन की सूचना नहीं थी। ठाकुर साहब ने देखा - सुमन के दोनों नेत्र पानी से भरे हैं और गाल भी तर हैं। उन्होंने पूछा, "अब कैसी हो, सुमन ?"

"अच्छी तो हूँ, भैया !" सुमन ने उत्तर दिया।

ठाकुर साहब ने पूछा, "रातभर घर से हम लोगों की अनुपस्थिति तुम्हारी भाभी को मालूम है या नहीं, सुमन ?"

सुमन ने हँसकर उत्तर दिया, "नहीं भैया ! कल रात शकर की माँ को पकडकर सीता-बनवास की कथा सुनती रहीं और दो बजे रात सोई हैं सो अभी थोडी देर पहले ही तो उठी हैं।"

चौदहवाँ परिच्छेद

ठाकुर साहब तीसरे पहर कपडे-लत्ते पहन कर घूमने को जाने वाले थे कि सुमन ने तार का एक लिफाफा देकर भैया को रोकते हुए कहा, "आपके नाम यह तार आया है।"

ठाकुर साहब ने लिफाफा फाडकर तार पढा और कहा, "काटजू ने तार दिया है कि लन्दन से यह सूचना मिली है कि प्रीवी कौंसिल ने हमारी अपील स्वीकार कर ली है और इसकी फीस के लिए तथा खर्च के लिए लगभग १०,००० रुपये चाहिए। ये रुपये दो दिनों के अन्दर मुम्बई पहुँचने चाहिएँ। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मालगुजारी भी अदा करनी है। महाजन की रकम का भी सूद अदा करना है। उसकी मियाद निकले भी १५ दिन हो चुके हैं। इधर काटजू भी तकादे पर तकादे कर रहा है।"

सुमन ने मुखजबानी हिसाब लगाया। कुल कम-से-कम २० हजार रुपयों की जरूरत है। अभी उस दिन त्रिपुण्डधारी ने बताया था कि कुल में दो हजार रुपये इकट्ठे हुए हैं। यह रकम तो सरकारी मालगुजारी का भी चौथाई भाग है। उसे अत्यन्त चिन्ता ने आ घेरा था। वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगी – हे भगवान ! किसी भाँति इस बार तो लाज रक्खो, और इस चिन्ता-सागर से भैया को पार उतारो।

ठाकुर साहब वहाँ से उठकर अपनी पत्नी के कमरे में चले गए थे। सुमन किसी कार्यवश वहाँ से निकली तो उसने शोभा को यह कहते हुए सुना, "तुम अपने राज्य को प्राप्त करो या न करो, जमींदारी हस्तगत हो या न हो, किन्तु मैं अपने गहने देने के लिए तैयार नहीं हूँ। आखिर तो, मुझे मालूम होता है कि मुझे अपने पुत्र को साथ लेकर दर-दर भीख माँगनी पडेगी किन्तु तब तक तो मैं अपना काम इनसे चला ही लूँगी। तुम चाहे काटो-बाढो और मेरी बोटी-बोटी कर दो, परन्तु गहने नहीं दे सकती।"

ठाकुर साहब ने कहा, "मैं गहने कोई बेचता थोडे ही हूँ, केवल गिरवी रखकर अपना काम चला लूँगा, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं प्रीवी कौंसिल में जीत जाऊँगा तो, तब कोई

ठाकुर साहब ने खुश होकर कहा, "अब मैं निश्चिन्त हूँ।"

चाय पीने के बाद ठाकुर साहब ने फिर कहा, "अच्छा, मैं अब जरा सोलूँ। तू भी एक नींद लेले, सुमन ! यह जरूरी है।"

"हाँ, आप सो रहो, भैया ! मुझे भी कई बातें पूछनी थीं, पर अभी नहीं। अभी कई काम बाकी हैं। पहले उन्हें निपटा लूँ।"

ठाकुर साहब शॉल ओढ़कर लेट गये।

□□□

चौदहवाँ परिच्छेद

ठाकुर साहब तीसरे पहर कपडे-लत्ते पहन कर घूमने को जाने वाले थे कि सुमन ने तार का एक लिफाफा देकर भैया को रोकते हुए कहा, "आपके नाम यह तार आया है।"

ठाकुर साहब ने लिफाफा फाडकर तार पढा और कहा, "काटजू ने तार दिया है कि लन्दन से यह सूचना मिली है कि प्रीवी कौंसिल ने हमारी अपील स्वीकार कर ली है और इसकी फीस के लिए तथा खर्च के लिए लगभग १०,००० रुपये चाहिए। ये रुपये दो दिनों के अन्दर मुम्बई पहुँचने चाहिएँ। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मालगुजारी भी अदा करनी है। महाजन की रकम का भी सूद अदा करना है। उसकी मियाद निकले भी १५ दिन हो चुके हैं। इधर काटजू भी तकादे पर तकादे कर रहा है।"

सुमन ने मुखजबानी हिसाब लगाया। कुल कम-से-कम २० हजार रुपयों की जरूरत है। अभी उस दिन त्रिपुण्डधारी ने बताया था कि कुल में दो हजार रुपये इकट्ठे हुए हैं। यह रकम तो सरकारी मालगुजारी का भी चौथाई भाग है। उसे अत्यन्त चिन्ता ने आ घेरा था। वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगी – हे भगवान ! किसी भाँति इस बार तो लाज रक्खो, और इस चिन्ता-सागर से भैया को पार उतारो।

ठाकुर साहब वहाँ से उठकर अपनी पत्नी के कमरे में चले गए थे। सुमन किसी कार्यवश वहाँ से निकली तो उसने शोभा को यह कहते हुए सुना, "तुम अपने राज्य को प्राप्त करो या न करो, जमींदारी हस्तगत हो या न हो, किन्तु में अपने गहने देने के लिए तैयार नहीं हूँ। आखिर तो, मुझे मालूम होता है कि मुझे अपने पुत्र को साथ लेकर दर-दर भीख माँगनी पडेगी किन्तु तब तक तो मैं अपना काम इनसे चला ही लूँगी। तुम चाहे काटो-बाढो और मेरी बोटी-बोटी कर दो, परन्तु गहने नहीं दे सकती।"

ठाकुर साहब ने कहा, "मैं गहने कोई बेचता थोडे ही हूँ, केवल गिरवी रखकर अपना काम चला लूँगा और मुझे पूर्ण विश्वास है कि में प्रीवी कौंसिल में जीत जाऊँगा तो, तब कोई

आपत्ति न रहेगी। केवल थोडे दिनों का काम हे, क्या तूँ मेरे पर इतना भी विश्वास नहीं कर सकती ?"

शोभा ने फुफ्कारते हुए उत्तर दिया, ' भले ही तुम अप्रसन्न हो जावो, किन्तु में अपने गहने नहीं दे सकती ओर विश्वास नहीं करती। उस दिन भैया ने भी तो यही कहा था कि जीजा की जमींदारी भले ही जहन्नुम में जाये, किन्तु स्त्रियों के एकमात्र सबल गहनों को तुम मत देना। क्या आपको गहने माँगते शर्म नहीं आती ? अपनी बहिन को भी तो गहने दिए हैं, उनको भी तो ले सकते हो। मेरे से माँगने क्यों आये ? यदि वह दे दे तो जानूँ कि भाई की शुभचिन्तक है।"

ठाकुर साहब का कलेजा इस बात से जल गया और चिढ कर बोले, "मैं तुम्हारे गहने नहीं लूँगा पर सुमन के गहने, चाहे प्राण चले जायँ, किन्तु मैं ले नहीं सकता। उसको गहने मेंने नहीं, माँ ने दिये हें। वे उसके विवाह के सबल हैं। मैं तो वडी आशा लेकर तुम्हारे पास आया था, किन्तु शोभा ! तुम इसमें बिल्कुल दोषी नहीं हो। दोष है मेरे दुर्भाग्य का !" कहकर झटके के साथ उठकर वे वाहर चले गये। ठाकुर साहब को कमजोरी के कारण चक्कर आने लगा था, लेकिन सभलकर ड्योढी में गये जहाँ त्रिपुण्डधारी बैठा था और कहने लगे, "भाई ! कोई प्रबन्ध न हो सका।" और आँखें मूँदकर, अपना सिर हिलाने लगे।

इसी समय सुमन कमरे के अन्दर गई और एक टीन की पेटी लेकर आई। उसने त्रिपुण्डधारी को कहा, "जरा, तुम बाहर जाओ। में तुम्हें अभी बुला लेऊँगी।"

त्रिपुण्डधारी भी उसके हाथ में पेटी देखकर मामला समझ गया और, "जो आज्ञा।" कहकर बाहर चला गया।

सुमन ने गहनों की पेटी को अपने भाई के चरणों में रख दिया और कहने लगी, "भैया ! आपको इन गहनों को स्वीकार करना ही होगा। यह कैसे हो सकता है कि आपके दुर्दिनों में भी मैं कुछ काम न आऊँ ! मैं पराई थोडे ही हूँ ?" कहकर वह अपनी आँखों से अश्रु बहाने लगी। ठाकुर साहब को सब-कुछ सह्य हो सकता था, किन्तु अपनी बहन के आँसू गिरते नहीं देख सकते थे अत वे दुविधा में पड गये। कुछ देर के बाद सोचते हुए उन्होंने कहा, "ले लिये रे मेंने तेरे गहने ! मैं भला तुम्हें पराई समझ सकता हूँ ?"

सुमन के मुखमडल पर इस बात को सुनकर प्रसन्नता छा गइ ओर उसने त्रिपुण्डधारी को आवाज दी।

ठाकुर साहव ने त्रिपुण्डधारी को आते ही समझाया और कहा, "देखो, घर में पाँच हजार रुपये पडे हैं और दो हजार मालगुजारी के अदा हुए हैं, उनको ल जाओ और ये ले जाओ गहने। इनको १२ हजार रुपये में दे देना और सारे रुपये लेकर उनमें से दस हजार तो तार द्वारा काटजू को मुम्बई भेज देना और बाकी के रुपयों में से महाजन का सूद चुका कर वापिस चले आना।"

इसके बाद गहनों को लेकर त्रिपुण्डधारी शरणानन्द सन्तरी के साथ चला गया। इसके बाद ठाकुर साहब वीरेन्द्र के कमरे में पहुँचे, जहॉ कि वह सो रहा था। ठाकुर साहब की पद-ध्वनि सुनकर वह जाग गया और कहने लगा, "भैया, बडे जोर की सर्दी पड रही है आज। सुमन कहाँ है ?"

"वह इस अभागे को गर्म करने के लिए, चाय की तैयारी में लगी है। परन्तु तुम तो आज बहुत सोये, वीरेन्द्र !"

"हाँ, भैया ! कुम्भकरण की नाईं सोने का मौका आज ही मिला है। अच्छा भैया, उसकी कोई खबर मिली ?"

"किसकी ? नरबाधा की खबर न ? नहीं। आज मैं किसी की खबर न ले सका। पता नहीं, सुमन को कुछ मालूम है या नहीं।"

इसी समय सुमन ने अन्दर प्रवेश किया और कहने लगी, "किसकी बात हो रही थी, भैया ?"

"यही, नरबाधा की। तुमको उसकी कोई खबर मिली ?"

"नहीं तो।"

फिर सबने चाय पीना शुरू किया। थोडी देर बाद वीरेन्द्र ने सुमन को कहा, "मेरा एक आग्रह है, आप स्वीकार करोगी ?"

"कहिए !"

"यही कि भैया का स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो गया है, अत आप इनको लेकर मेरे साथ काशी चलोगी ? ताकि स्वास्थ्य ठीक हो जाय।"

न तो सुमन ने और न उमरावसिह ने ही इसका कोई उत्तर दिया। कोई उत्तर न मिलने के कारण वीरेन्द्र फिर बोला, "क्या आप नहीं चलोगी ? उत्तर क्यों नहीं देतीं ?"

"मैं यह विचार रहा हूँ कि यह कैसे सम्भव हो सकता हे ? सुमन भी यही सोच रही है। अत हम दोनों मौन हैं।"

"क्यों, इसका क्या कारण है ?" वीरेन्द्र ने पूछा।

"यदि कोई एक-दो कारण हों तो बताये भी जायँ।" ठाकुर साहब ने कहा।

"अच्छा, मैं यह जान कर ही सन्तोष करूँगा कि क्या अभी मैं आपकी सेवा के योग्य नहीं हुआ हूँ ? अच्छा, सध्या हो गई है। अब मैं नहीं बैठ सकता। जरा सध्या-क्रिया से निवृत्त हो आऊँ।" वीरेन्द्र ने कहा।

"तुम भी निवृत्त हो आओ, भैया ! मैं अभी देखकर आती हूँ कि तरुण के अध्यापक के आने में कितनी देर है ?"

□□□

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

त्रिपुण्डधारी ठीक समय में अपना कार्य पूर्ण करके लौट आया। त्रिपुण्डधारी ज्यों ही बाहर निकल करके आया, त्यों ही नरबाधा अपने गुरुदेव सत्यपाल के साथ वहाँ पहुँच गई। वह एक किनारीदार साडी पहने हुए थी। उसके चेहरे से एक प्रकार का शात गाम्भीर्य टपक रहा था। ठाकुर उमरावसिंह ने नरबाधा के प्रणाम का उत्तर देकर कहा, "बैठो, नरबाधा ! बैठिए सत्यपाल बाबू !"

"आपको यह 'बाबू' और अन्य आदरसूचक शब्द छोडने होंगे, तब ही मैं यहाँ निश्चिंत होकर बैठ सकता हूँ।" सत्यपाल ने बैठते हुए कहा।

"अच्छा, जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसी ही होगा।" ठाकुर साहब ने उत्तर दिया।

"सुमन बहन कहाँ है ?" नरबाधा ने प्रश्न किया।

"वह अभी अन्दर गई है, बुलाये देता हूँ।'

वीरेन्द्र जमीन में गडी हुई आँखों से बैठा था। नरबाधा ने उसको सम्बोधित करके कहा, "क्या आप मुझको जानते हैं, वीरेन्द्र बाबू ?"

"आपको इस प्रकार का सन्देह, क्यों हुआ ?" वीरेन्द्र ने पूछा।

"नहीं, आप मुझे नहीं पहचान सके। आपने तो मेरे लिए 'आप' का अध्याय समाप्त करके 'तुम' का अध्याय शुरू किया था। लेकिन मालूम होता है, आप उस भी भूल गये। क्यों, वीरेन्द्रबाबू ?"

वीरेन्द्र ने उसका कोई उत्तर न दिया। वह मोन धारण करके रहा। नरबाधा ने उसको निम्तब्ध देखकर फिर पूछा, "मौन धारण किए हुए क्यों हो, वीरेन्द्रबावृ ? आपको उत्तर देना ही होगा।'

इसी समय सुमन ने मुस्कराते हुए, कमरे में प्रवेश किया। उसे देखकर नरबाधा ने कहा, "बहिन, आप को ही इसका फैसला करना होगा।"

इसी बीच उमरावसिंह ने कहा, "नहीं, अभी तो वीरेन्द्र मुझे आपके घर चलने के लिए कह रहा था।"

नरबाधा इसको सुनकर कुछ लज्जित-सी हुई और फिर कहने लगी, "क्षमा कीजिए, वीरेन्द्रबाबू ! मैंने आप पर अभियोग लगाकर बडा भयानक अपराध किया है।"

वीरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "मैंने तुम्हें क्षमा किया, नरबाधा !"

फिर सभी लोग खिलखिलाकर हँस पडे। फिर नरबाधा ने सत्यपाल का परिचय देना प्रारम्भ किया, वह कहने लगी, "आप एक महान, धुरन्धर विद्वान और उच्च विचार वाले व्यक्ति हैं।"

सत्यपाल ने बीच ही में टोकते हुए कहा, "चुप भी रहो, नरबाधा !"

"मैं कोई झूठ तो कह नहीं रही हूँ !" नरबाधा ने यह कहते हुए अपने वक्तव्य को जारी रखा, "सर्वप्रथम, जब मैं अपने पिता के साथ पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में गई थी, तो इनसे मेरी मुलाकात हुई। ये बडे सेवार्थ कार्य करने वाले हैं। शराब की पिकेटिंग के समय इनको गिरफ्तार कर लिया गया और जेल में ठूँस दिया गया। उसी समय मेरे हृदय में क्रान्तिकारी भावनाएँ जागृत हुईं और मैं भी इन्हीं के साथ जेलयात्रा कर आई। ये अत्यधिक प्रभावशाली, शिक्षित और ब्रह्मचारी व्यक्ति हैं।"

"शात भी तो रहो नरबाधा ! इन लोगों के हृदय में मेरे प्रति कोई भ्रम तो पैदा न हो जाय।" सत्यपाल ने नरबाधा को बीच में टोकते हुए कहा।

"आपके प्रति भ्रमपूर्ण धारणा न हो, इसीलिए तो मैं बतला रही हूँ। बाबा का स्नेह जितना इन पर था, उतना मेरे पर भी नहीं था। अब ये जेल से छूटकर उनसे मिलने के लिए आए थे। अब फिर इनको कब जेल की यातना झेलनी पडे, सो तो ये ही जानें।"

"अच्छा, तो पिकेटिंग करना, सत्याग्रह करना और जेल जाना ही इनके आदर्श हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य की प्रवृत्तियाँ भी तो कितनी भिन्न हुआ करती हैं ?" वीरेन्द्र ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा।

सत्यपाल ने शांति और गम्भीरता से कहा, "आदर्श को इतना तुच्छ नहीं समझना चाहिए, वीरेन्द्रबाबू !" फिर उसने नरबाधा की ओर मुस्कराते हुए कहा, "नरबाधा, तुम्हीं कह रही थी कि वीरेन्द्रबाबू   !"

नरबाधा ने बीच ही में उत्तर दिया, "इतने उकसाओ मत सत्यपाल ! जिस वस्तु को

हम घृणा करते हैं, उसी का फिर आलिंगन भी किया जाता है। कितने आश्चर्य की बात है ?" फिर उमरावसिंह की ओर मुँह करके बोली, "भैया, आपसे हम कितना सुनने की आशा लेकर आए थे, किन्तु आप तो मौन बैठे हैं। उस दिन तो वीरेन्द्रबाबू ने काफी सुनाया था, अत आज मौन भी रहें तो कोई आपत्ति की बात नहीं।"

"किन्तु वीरेन्द्र अधिक देर तक मौन नहीं रह सकता।" ठाकुर साहब ने कहा।

वीरेन्द्र ने नरबाधा की ओर देखते हुए कहा, "आपसे कुछ काम था। पहले दो काम जरूरी हैं, उनको करलें। एक तो भाभी से मिलना और दूसरा त्रिपुण्डधारी से। भैया, आप अतिथियों का सत्कार करें। मैं जाता हूँ। क्षमा करना।"

"इसका तात्पर्य ?" ठाकुर उमरावसिंह ने पूछा।

"नरबाधा स्वय यह कह रही थी कि मेरी यहाँ उपस्थिति और अनुपस्थिति बराबर है। अच्छा, मैं चला।" कहकर वीरेन्द्र बाहर की ओर चला गया।

ठाकुर उमरावसिंह समझ गये कि वीरेन्द्र नरबाधा और सत्यपाल के इशारे से ही बाहर गया है।

नरबाधा, अब तक जो चुप थी, उसने कहा, "सत्यपाल ! वीरेन्द्रबाबू भी एक असामान्य व्यक्ति मालूम होते हैं। प्रतीत होता है, मानव की साधारण सुख-दु ख की अनुभूति को वे महत्त्व नहीं देते।"

"तुम त्रुटि पर हो, जगली !" उसने उत्तर दिया। सत्यपाल के मुख से जगली शब्द सुनकर ठाकुर साहब ने पूछा, "तुम्हारा दूसरा नाम जगली है, नरबाधा ?"

"हम लोग पहली बार एक छोटे-से जगल में मिले थे अत सत्यपाल ने मेरा नाम जगली निकाल दिया।" नरबाधा ने उत्तर दिया।

"अच्छा, सत्यपाल अब अपनी देशभक्ति की कहानी सुनाओ।" ठाकुर साहब ने कहा।

"देशभक्ति ! बाप रे ! मैंने इसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की। बहुत-से लोगों की मेरे प्रति ऐसी धारणा हो गई है जिसमें हमारी सरकार का अग्रणी हाथ है। वह नहीं चाहती कि मैं उसके अतिथि-भवन (जेल) के बाहर अधिक दिनों तक रहूँ। अत मैं पिकेटिंग करवा दूँ ताकि देश के लोग स्वदेशी चीजों का उपयोग करेंगे तो देश की चीजें देश में ही रहेंगी। देशभक्ति और देशोद्धार ही कह सकता हूँ, कारण कि नारी जाति का अभी हमारे राष्ट्र में सम्मान नहीं है।"

"इससे अधिक कोई सत्यव्रत नहीं, सत्यपाल।" ठाकुर साहब ने कहा।

ठाकुर साहब की बात पर मुस्कराते हुए सत्यपाल ने कहा "ठाकुर साहब ! आये

दिन जब मैं नारी के अपमान के बारे में अखबारों में पढता हूँ तो मेरा हृदय कपायमान हो जाता है, शरीर में रोमाच हो जाता है। मेरे हृदय में भाव होता है कि क्या मैं अपनी खुद की शक्ति का ही प्रयोग नहीं कर सकता ? हमारे माननीय नेतागण गला फाडकर चिल्लाते हैं कि स्वदेशी कपडों का प्रचार करो, नारी के अधिकारों को दो, चरखा कातो, गृह उद्योगों को बढाओ और दस्तकारी सीखो आदि-आदि, किन्तु जब तक गृहलक्ष्मी की आपदा नहीं जाती, तब तक राष्ट्र ओर समाज में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। जब तक स्त्रियों का उद्धार न होगा, तब तक राष्ट्रोद्धार नहीं हो सकता। कदापि नहीं हो सकता।"

सत्यपाल के चुप हो जाने के बाद नरबाधा ने कहा, "तुम अकेले क्या कर सकते हो, सत्यपाल ?"

"अब मैं अकेला नहीं हूँ, नरबाधा। आज ईश्वर ने मेरी क्रांति-भावना देश के अनेक नवयुवकों में भी भर दी है। मैं अब ही समझ सका हूँ कि इतने दिनों हमारी दशा ऐसी क्यों थी ?"

"क्यों थी ?" उमरावसिह ने पूछा।

"मैं यही सोचा करता था कि एक महात्मा गाँधी की जय बोल देने से सैकडों आदमी घर-बार छोडकर निकल पडते हैं, तब हमारी यह हालत क्यों ? अब, जब मेरी नरबाधा ने आँखें खोल दी हैं, तो मुझे मालूम हुआ है कि हमारी इस दुर्गति का कारण, नारी जाति की वर्तमान में ह्रास की ओर ले जाने वाली प्रगति है।"

"नारी जाति की प्रगति ! तुम क्या कह रहे हो, सत्यपाल ?" ठाकुर साहब ने विस्मित स्वर में पूछा।

"हाँ, आज नारी जाति अपने सतीत्व को महत्त्व नहीं देती और इसको वह कुसस्कार और रूढिगत रिवाज कह कर पुकारती है। कितने आश्चर्य की बात है ? फिर भी हमारे नेतागण इस बात की ओर तनिक भी आकर्षित नहीं होते। अत जब तक हमारी यह स्थिति रहेगी तब तक देशोद्धार होना असम्भव है।"

नरबाधा ने देखा कि ठाकुर साहब ध्यानमग्न होकर सत्यपाल की बातें सुन रहे हैं, तो उसने बीच में कहा, "यह तो बताओ, सत्यपाल ! यह सत्य कैसे पनप सकेगा, जबकि अकेले तुम और तुम्हारे कई साथी ही इसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं ? यह तो तब पनपेगा जबकि एक विशाल जनसमूह इसमें आकर कार्य करने लग जायेगा।"

ठाकुर साहब ने सत्यपाल का पक्ष लेते हुए नरबाधा की बात का प्रतिकार किया, 'नरबाधा ! सत्यपाल का यह महान् प्रयास कभी विफल नहीं हो सकता। यह प्रयत्न अवश्य एक-न-एक दिन सफल होगा। सत्यपाल को मैं आशीर्वाद देता हूँ कि वह अपने प्रयास में शीघ्र

सफल हो।" फिर सुमन की ओर देखकर कहा, "क्यों सुमन ! अभी चाय बनी नहीं ?"

सुमन ने एक बार सत्यपाल की ओर श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखते हुए अपने भैया से कहा, "अभी देखती हूँ, भैया !" और बाहर चली गई।

ठाकुर साहब ने सत्यपाल से पूछा, "तुम अभी कितने दिनों तक यहाँ रहोगे, सत्यपाल ?"

"अभी तक अवधि निश्चित नहीं है। मैं तो अभी जाने वाला था, किन्तु जगली के कारण बडी परेशानी है, सो रुक रहा हूँ।" सत्यपाल ने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

इसी समय सुमन चाय का सामान लेकर चली आई। ठाकुर साहब ने सुमन को कहा, "सुमन ! पहले नरबाधा और सत्यपाल को दो, ये हमारे अतिथि हैं।"

सत्यपाल और नरबाधा दोनों हँसने लगे, "भैया ! हम लोग अभी पीकर ही आ रहे हैं।" सत्यपाल ने कहा।

"खैर, फिर पीने में भी कोई आपत्ति नहीं है।" ठाकुर साहब ने कहा।

इसी वक्त वीरेन्द्रबाबू भी आ गये। उनके आते ही नरबाधा बोली, "हम लोग आपका ही इन्तजार कर रहे थे। अहोभाग्य हमारा कि आप ठीक मोके पर आ ही गये।" यह सुनकर सारे खिलखिलाकर हँस पडे।

वीरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "भले ही कोई दूसरा याद करले, लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम तो मुमे याद कर ही नहीं सकती।"

"किन्तु मैं किस हेतु याद नहीं कर सकती ?" नरबाधा ने भी मुस्कराते हुए पूछा।

सुमन ने दो तश्तरियों में चाय और नाश्ता भरकर सत्यपाल और नरबाधा के सामने रख दिया और एक तश्तरी में अपने भाई को भी चाय के प्याले सहित दे दिया और खडी हो गई। यह देखकर वीरेन्द्र कहने लगा, "यह क्या ? हमको तो भूल ही गई।"

"अच्छा !" सुमन ने कहा और वीरेन्द्र को भी नाश्ता दे दिया गया।

"सत्यपाल ! तुम जितने दिन तक यहाँ रहो, कम-से-कम दिन में एक बार तुम और नरबाधा दोनों ही आ जाया करो। इससे मेरे चित्त को शान्ति मिलेगी।" कहते हुए ठाकुर साहब ने उन दोनों को विदा किया।

उनके जाने पर ठाकुर साहब ने वीरेन्द्र को कहा "वीरेन्द्र, सत्यपाल भी कितना असाधारण व्यक्ति है कि उसको अहकार और अभिमान तो छू तक नहीं गया है। उसका चरित्र आदर्श और महान है। मैं उसके चरित्र पर मोहित हूँ।'

□□□

सोलहवाँ परिच्छेद

एक मास वीत गया। इस वीच नरवाधा, सुमन से एक बार मिल गई थी। वीरेन्द्र रोज घर जाने की तैयारी करता और रोज ही किसी कारणवश रुकना पड जाता। आज उसने निश्चय कर लिया था कि वह चाहे जैसे भी हो, लौट जायेगा और उमरावसिह के कमरे में बैठा बातें कर रहा था। नरवाधा और सत्यपाल के जाने के बाद वीरेन्द्र ने एक बार आँख उठाकर देखा।

ठाकुर साहब ने कुछ देर बाद कहा, "मैं जरा बैठकखाने में कुछ काम देख आऊँ।" और यह कहकर वे रवाना हुए। अब कमरे में वीरेन्द्र और सुमन थे।

वीरेन्द्र ने जोर से आवाज दी, "सुमन रानी !"

"कहो !" सुमन के ओष्ठ काँप रहे थे।

"सुमन रानी !" वीरेन्द्र ने फिर आवाज दी।

"कहो भी ? क्या आपके पास कहने को कुछ नहीं है ?" सुमन वीरेन्द्र की आवाज का मतलब समझती थी। उसका हृदय आनन्द के घोडे पर भागा जा रहा था और नेत्रों से खुशी के आँसू बहने लगे।

"कुछ नहीं है ? इतना है कि तुम सुनते-सुनते थक जाओगी। मैं तुम्हें पाकर कितना सुखी हूँ रानी ! नरवाधा का मोह क्षणिक था। तभी तो एक ही हिलोर में वह टूट गया, पर तुम्हारा प्रेम शाश्वत है, रानी !"

"सच ? तुम भूल कर रहे हो।"

"नहीं रानी, बिल्कुल नहीं। और न डिगने वाला सत्य सुना रहा हूँ।"

इसी क्षण उमरावसिह "सुमन ! सुमन !" पुकारते हुए अन्दर आ गये। उन्होंने सुमन के नेत्रों में पानी भरा देखकर पूछा "यह क्या है ?"

'हम दोनों को आशीर्वाद दो, भैया !" सुमन ने धीमे स्वर में कहा।

'अरे वीरेन्द्र ! मेरे भाई वीरेन्द्र ! में स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। मेरी माँ जब मरने वाली थी, उस समय मैंने उसे वचन दिया था कि में सुमन के प्रति अपने कर्तव्य को अन्य सभी कर्तव्यों की अपेक्षा प्रधानता दूँगा। यही मेरी शान्ति है, सुमन ही मेरे प्राण हैं।"

"भैया ! मैं आपके विश्वास को पूरा कर सकूँगा ?"

"अवश्य कर सकोगे भाई ! ओह ! आज मैं कितना सुखी हूँ ? अरे, ओ शरणानन्द !"

आवाज सुनते ही सन्तरी दौडा आया। उसके आते ही ठाकुर साहब ने कहा, "अरे, दौडकर जा, पुरोहितजी को बुला ला !" और फिर वीरेन्द्र की ओर मुडकर बोले, "भाई ! मैं चाहता हूँ कि इसी मास में यह शुभ कार्य सम्पादित हो जाय। मैं अभी तुम्हारे पिता को पत्र लिख रहा हूँ।"

"पर, मैं तो आज घर लोट रहा हूँ, भैया !"

"नहीं, नहीं। आज नहीं। अभी दो-तीन दिन तक और ठहरना होगा। अच्छा, पहले पुरोहितजी को आ जाने दो।"

इसी समय उन्हें कुछ याद आया। उन्होंने सुमन से कहा, "सुमन ! प्रीवी कौंसिल में हम मुकद्दमा जीत गये। अभी तार आया है।"

"ओर तुम आनन्द की हिलोर में इस तरह भूल गये कि यह महत्त्वपूर्ण समाचार भी याद न रहा ?" सुमन ने पूछा।

"इस महान सफलता के सामने, इस सफलता का कोई महत्त्व नहीं है, सुमन !" ठाकुर साहब ने हँसते हुए कहा, "अच्छा, जब तक तुम जाकर अपनी भाभी को प्रणाम कर लो।"

"उन्हें मैंने कल ही बता दिया था। पर, भैया तुम महान हो, देवता हो !" वीरेन्द्र ने कहा।

"अरे, कल ही कह दिया था ? और मैंने कौनसा अपराध कर दिया था कि चौबीस घण्टे तक तुमने यह बात मुझसे छिपाकर रखी ? अच्छा, सुमन ! मुझे एक कप चाय पिला दो।'

इसी समय त्रिपुण्डधारी ने आकर सूचना दी कि मुम्बई से मिस्टर काटजू आये हैं और बहुत-से कागजात पर ठाकुर साहब को हस्ताक्षर करने होंगे। ठाकुर साहब ने कहा ' अच्छा उनसे कह दो कि मैं अभी आया। उनका आदर-सत्कार करो।"

त्रिपुण्डधारी ने जाते समय कहा हुजूर ! आपकी आज्ञा के बिना ही मैंने घर सजाने

और रोशनी करने का प्रवन्ध कर दिया है। कारण मुझे कभी विश्वास नहीं था कि ऐसा दिन देखना भी भाग्य में होगा।"

"अच्छा किया। तुम इस झगडे में पूर्ण स्वतन्त्र हो, त्रिपुण्डधारी ! हाँ, मिस्टर काटजू से कह दो, मैं अभी आ रहा हूँ।"

त्रिपुण्डधारी के जाते ही शोभा वहाँ पहुँच गई और उसने मुस्कराते हुए वीरेन्द्र से पूछा, "क्यों वीरेन्द्रबाबू ? मैंने सुना है कि विलायत की अपील में हम लोग जीत गये हैं ?"

वीरेन्द्र के जवाब देने के पूर्व ही ठाकुर साहब बोल उठे, "बैठो, शोभा ! हाँ, हम लोग जीत गये। पर जिस जीत की खबर तुमने मुझसे चोबीस घण्टे तक छिपाए रखी उस जीत के मुकाबले यह कुछ भी नहीं है।"

"कल रात वीरेन्द्रबाबू ने मुझ से कहा - भाभी, में आपकी ननद की भीख माँगता हूँ, तो मुझे असीम हर्ष हुआ पर यह सोच भी हुआ कि इस कष्ट के समय तुम इसके प्रवन्ध के लिए रुपये कहाँ से पाओगे ? मुझे नींद नहीं आई, रातभर।"

"आज आराम से नींद लेना, शोभा !" ठाकुर साहव ने कहा ओर फिर वीरेन्द्र की ओर मुडकर बोले, "अच्छा, वीरेन्द्र ! मैं काटजू से मिल आऊँ। तुम भी चलो मेरे साथ। हाँ, सुमन ! मिस्टर काटजू रात का भोजन यहीं करेंगे।"

"उसकी व्यवस्था मैंने करली है, भैया !" सुमन ने उत्तर दिया।

फिर ठाकुर साहब वीरेन्द्र को लेकर बेठकखाने में पहुँच गये। इसी समय तरुण ने आकर कहा, "बुआ ! मेरे मास्टर साहव कह रहे थे कि बाबू राजा हो गये हैं ! क्यों ?"

"तुम्हारे मास्टर के मुँह में घी-शक्कर !" सुमन ने उत्तर दिया और तरुण को गोद में लेकर खुशी से उछलती हुई उसे खाना खिलाने लगी। रसोईघर में पहुँचकर तरुण ने पूछा, "यदि बाबू राजा हो गये तो में कोन हूँ ? राजपुत्र ! क्यों ? अब तो मुझे एक घोडा मिलेगा। मैं उस पर चढकर शिकार खेलने जाऊँगा और मेरे साथ कौन चलेगा ? तुम चलना, बुआ ! क्यों चलोगी न ?"

"अच्छा, पहले खा ले ! फिर सोये-सोये सोचा जायेगा कि कौन तेरे साथ चलेगा ?" सुमन ने कहा और तरुण प्रेम से खाना खाने लगा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

उस दिन साय को इटावा से ५-६ मील की दूरी पर दूसरे गाँव में काँग्रेस की एक सभा थी। सत्यपाल उसका सभापति था और नरबाधा प्रधान वक्ता थी। रात को आते समय बहुत देर हो गई। घर आने पर नरबाधा की मौसी ने सूचित किया कि साय को वीरेन्द्र और ठाकुर उमरावसिह आये थे और वीरेन्द्र ने बताया है कि विलायत की अपील में ठाकुर साहब जीत गये हैं और वीरेन्द्र अपनी शादी की तैयारी के लिए घर जाने वाला है। उसकी शादी सुमन के साथ होना तय हुआ है। वह यह भी कह गया है कि यदि नरबाधा को समय मिले तो एक बार मिल ले।

वीरेन्द्र और सुमन का विवाह सुनकर नरबाधा का खून उबल आया। उसने कहा, "अच्छा ! मैं क्यों जाने लगी ? मैं तो प्रतिशोध लेना चाहती हूँ और अवश्य लूँगी। मुये कोई रोक नहीं सकता।" और वह नहीं गई।

दूसरे ही दिन ठाकुर उमरावसिह के दरवाजे पर शहनाई बज रही थी। ठाकुर साहब बैठकखाने में मिस्टर काटजू से कुछ परामर्श कर रहे थे और अन्दर सुमन चार बजे से ही टहलने के लिए निकले वीरेन्द्र की प्रतीक्षा कर रही थी। वीरेन्द्र जब लौटा, आठ बज चुके थे। उसे देखते ही सुमन ने पूछा, "आज इतनी देर कहाँ हो गई ?"

इतने ही में ठाकुर साहब आ गये। उन्हें देखते ही वीरेन्द्र ने कहा, "भैया ! आज व्यासजी का असली रूप दिखाई पडा। मैं टहल कर लौट रहा था तो उनके दरवाजे पर गॉव के काफी लोगों को इकट्ठा हुआ देखा। मुझे देखते ही व्यासजी ने मुझे पुकारा और चिल्लाकर कहने लगे कि तुम लोगों के कहने से उस दिन उस महापातकी सुरेन्द्र की अत्येष्टि की गई और आज उसकी शाहजादी क खेल देखो। न जाने कहाँ का एक लडका सत्यपाल आया है। उसी के सग रात को ग्यारह बजे तक कधे में हाथ डाले घूमती रहती है। उसने यह भी बताया कि

अगर सत्यपाल आज, इसी समय, दो घण्टे में गॉव के बाहर नहीं निकल जाता तो शाम तक नरबाधा के मकान में आग लगा दी जायेगी।"

वीरेन्द्र की बात सम्पूर्ण भी नहीं हो पाई थी कि नरबाधा वहाँ पहुँच गई। उसने ठाकुर साहब के पैरों की धूल ली और कहा, "भैया ! बडी मुसीबत में पडकर आपके पास आई हूँ।"

"क्यों, क्या बात हुई बहिन !" ठाकुर साहब ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"व्यासजी ने बतलाया कि २४ घण्टे के भीतर सत्यपाल गॉव छोडकर चला नहीं जाता तो लोग मेरे घर को आग लगा देंगे।"

"मैं तुम्हारी सहायता किस प्रकार करूँ, बहिन ? यही मैं सोच रहा हूँ। वीरेन्द्र ने तुम्हारे आने के कुछ ही पूर्व यह बात कही थी। उसकी बात समाप्त भी न हुई थी कि तुम पहुँच गई। मैं नहीं चाहता कि किसी के प्रति किसी भी प्रकार का अत्याचार हो। पर साथ ही गॉव के बहुमत को भी नाराज नहीं करना चाहता।"

"पर, भैया ! आप गॉव के जमींदार होने पर भी इतना अत्याचार सहन कर सकते हैं ?" नरबाधा ने प्रश्न किया।

वीरेन्द्र कुछ कहना चाहता था पर ठाकुर साहब ने उसके कहने के पूर्व ही कहा, "तुम ठीक कहती हो, नरबाधा ! गाँव का जमींदार होने के कारण मुझे यह अन्याय सहन नहीं करना चाहिए। पर समस्या यह है कि किस तरफ कदम बढाऊँ ?"

"हाँ, एक उपाय हो सकता है। तुम सत्यपाल से कहो कि वह अभी कुछ दिनों के लिए कहीं चला जाय।"

"वह तो जाना चाहता ही था। पर जब उसने सुना कि गाँव के पुराने, बूढे इस प्रकार का अत्याचार करने पर तुले हैं तो उसने साफ मना कर दिया। वह यह नहीं चाहता कि लोग यह कहें कि उनकी धमकी फलीभूत हो गई।'

"तब तो बहिन ! मुझे कोई दूसरा उपाय नहीं दिखाई देता।"

"तब, भैया ! मैं आपकी ओर से बिल्कुल निराश हो जाऊँ ?" नरबाधा ने लम्बी श्वास लेते हुए पूछा।

इसी बीच वीरेन्द्र ने कहा, "भैया, तुम इस मामले में हाथ डालकर गन्दे मत करो। कल रात को ये लोग सभा से अकेले लौटे। उससे ग्रामवासियों में इस प्रकार की धारणा स्वाभाविक ही हे। उन्हें समझाया नहीं जा सकता कि इन लोगों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है। भले ही वह कितना भी आदर्शपूर्ण क्यों न हो।"

"अच्छा, तुम कहते हो तो, वीरेन्द्र ! मैं अभी उन लोगों को बुलाकर पूछता हूँ।" ठाकुर साहब ने नरबाधा को ढाढस दिया।

नरबाधा वीरेन्द्र की बातों से खौल उठी। उसने खडे होते हुए कहा, "अच्छा, भैया! मैं अब जाती हूँ।' और फिर वीरेन्द्र की ओर देखकर बोली, "आज आपको मुझ से ईर्ष्या है, यह मैं जानती हूँ, वीरेन्द्रबाबू ! अन्यथा मेरे पिता को मृत्युशय्या पर पडे देखकर आपको सुयोग और मेरा शरीर स्पर्श करने में भी लज्जा नहीं हुई, क्या उसे भी बताना आवश्यक है ? मैं तो आपके इस प्रकार के व्यवहार की कल्पना ही नहीं करती थी।" और फिर एक बार ठाकुर साहब को निरखकर उसने मुस्करा कर कहा, "भैया ! आपके आश्वासन को ही सम्बल बनाकर मैं लौट रही हूँ।" और रवाना हो गई।

नरबाधा की बातों ने सबको घबरा दिया। बहुत देर तक सभी मौन थे। फिर सुमन ने कहा, "भैया, आप नित्य कर्म से निवृत्त हो लो। मैं देखती हूँ कि खाने में अभी कितना विलम्ब है ?" और कमरे से बाहर आ गई। वीरेन्द्र आँखें मूँदे हुए न जाने क्या सोच रहा था और ठाकुर साहब ऐसा महसूस करते थे कि मानो उनकी कोई वस्तु गायब हो गई है।

अठारहवाँ परिच्छेद

दोपहर में ठाकुर उमरावसिंह की आज्ञानुसार रामशरण व्यास और गाँव के अन्य लोग भी वहाँ पहुँचे। त्रिपुण्डधारी ने उनका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और अन्दर ठाकुर साहब को इन लोगों के आने की सूचना देने के लिए चला गया, जो कि वीरेन्द्र से उस समय बातचीत कर रहे थे।

कुछ ही मिनटों में ठाकुर साहब वहाँ आकर उपस्थित हुए। वीरेन्द्र भी उनके साथ था। वे कहने लगे, "व्यासजी, मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप लोगों ने गाँव में यह उपद्रव क्यों मचा रखा है ?"

"हमने तो कोई उपद्रव मचा नहीं रखा, उपद्रव मचा रखा है, उस सुरेन्द्रसिंह की लडकी नरबाधा ने। क्योंकि आप जानते ही हैं कि सुरेन्द्रसिंह तो मर गया, किन्तु इस लडकी का वह कोई प्रबन्ध नहीं कर सका। अब यह रात और दिन गाँवों में घूमा करती है, भाषण देती है और रासलीला करती है। यही नहीं, इसके साथ एक पुरुष भी है जिसके गले में हाथ डाले यह गलियों में घूमती है। अत आप भी सोच सकते हैं जमींदार साहब कि हमारे घरों में भी बहू-बेटियाँ हैं। इसका उन पर क्या प्रभाव पडता होगा ?"

"इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि आप उस सत्यपाल को गॉव में रखना नहीं चाहते। किन्तु यह कैसे हो सकता है ? किसी को, उसके अपने घर से निकालने का हमें क्या अधिकार है ? अत इसके लिए आप लोगों ने जो करने का निश्चय किया है वह उनके प्रति घोर अन्याय और अत्याचार है। मैं इसको तनिक भी सहन नहीं कर सकता। मैं आप लोगों को स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि नरबाधा और सत्यपाल भी आपकी भाँति ही मेरी प्रजा हैं। जिस प्रकार आपके प्राणों की रक्षा करने का भार मेरे पर है उसी प्रकार उनका भी है। अत यदि आप लोगों ने उन पर इस प्रकार का अत्याचार किया तो समझ लेना, मेरे पर अत्याचार किया है और फिर

मैं आपको समुचित दड देने के लिए वाध्य किया जाऊँगा। अच्छा, अव मैं चला। मरे कोई जरूरी काम है।" कहकर ठाकुर साहव उठ खडे हुए और साथ ही में वीरेन्द्र को भी इशारा करते गए।

वीरेन्द्र कुछ पीछे की ओर रुक गया था। जव ठाकुर साहव अन्दर चले गए तो व्यासजी ने पूछा, "वीरेन्द्रवावू ! ठाकुर साहव का यह आखिरी निर्णय है ?"

"मुझे तो कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है।"

"किन्तु यह वाढ किसी प्रकार से न रुकेगी। यह अत्याचार को समूल नष्ट करके ही रुकेगी।" व्यासजी ने वीरेन्द्रवावू से कहा और फिर अपने अनुयायियों को कहने लगे, "अच्छा, आप अभी जाइए। कल प्रातःकाल ही मेरे घर के आगे एकत्रित हो जाना। फिर आगे की कार्यवाही निश्चित कर दी जाएगी।"

जिस प्रकार सग्रामरत सेना अपने सेनापति की आज्ञा का पालन करती है, इसी प्रकार सारे लोग व्यासजी की आज्ञा मानकर चले गए।

वीरेन्द्र ज्योंही अन्दर प्रवेश कर रहा था, निपुण्डधारी ने पूछा, "सरकार ! समारोह इसी माघ महीने में होगा क्या ? ठाकुर साहव कह रहे थे कि समारोह वडी शान से किया जाएगा। जैसा समारोह अभी इस गाँव और कुल में भी नहीं हुआ है, उससे वढकर वे करेंगे।"

वीरेन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया और मुस्कराते हुए अन्दर चला गया। अन्दर पहुँचते ही ठाकुर साहब ने कहा, "वीरेन्द्र ! तुम तैयारी कर लो। अव आधे घटे का समय और है। और हाँ, सुमन ! तुमने वीरेन्द्र को कुछ खाने को दिया ? नहीं, तो इसे जल्दी से खिला-पिला दो।" और फिर न जाने क्या सोचकर बैठकखाने में चले गए।

सुमन भाई की आज्ञा पाकर एक थाल परोस लाई और वीरेन्द्रबावू के सामने खडी हो गई। वीरेन्द्र ने स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा, "सुमन ! जानती हो, मैं आज कितना सुखी हूँ ?"

"हॉ, जानती हूँ। पहले खाना खा लीजिए।" सुमन ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा।

"नहीं, सुमन ! मेरी इच्छा खाने की नहीं है। मुझे तो बस क्षणिक वियोग ही परेशान कर रहा हे।" वीरेन्द्र ने सुमन के मुँह की ओर देखते हुए कहा।

सुमन तुरन्त आनन्दसागर में गोते लगाने लगी, किन्तु फिर सम्हलते हुए कहा, "नहीं, आपको कुछ खाना ही पडेगा। मैं ऐसे नहीं मानूँगी।"

वीरेन्द्र ने खाते-खाते उससे कहा, "सुमन, तुम तनिक भी चिन्तित मत होना। मैं शीघ्र ही आने वाला हूँ।"

सुमन ने कोई उत्तर नहीं दिया। इसी समय ठाकुर साहब वहॉ पहुँच गये और कहा, "वीरेन्द्र ! देर हो रही है जल्दी करो। और हाँ तुम्हारे पिता का पत्र अभी आया था, जिसमें

उन्होंने सुमन को अपने परिवार में ग्रहण कर लिया है ओर शीघ्र ही कार्य को सम्पादित करने का आदेश दिया है।"

वीरेन्द्र ने इस समय तक भोजन कर लिया था और उसने झट से अपना थेला लिया और सुमन की तरफ स्नेहदृष्टि से देखता हुआ बाहर आकर गाडी में बैठ गया। सन्तरी शरणानन्द उसको स्टेशन तक पहुँचाने गया था।

❑ ❑ ❑

दूसरे दिन नरबाधा ने नित्य-कर्म आदि से निवृत्त होकर घर में पुकारा, "मोसी ! सत्यपाल कहाँ है ?"

"वह तो, अभी नदी पर नहाने के लिए गया हे, वेटी !" फिर उसने नरबाधा के मुँह की तरफ ताक कर देखते हुए कहा, "क्यों, कोई उपाय नहीं हुआ, नरबाधा ?"

"नहीं मौसी !"

"तब क्या करेंगे ? व्यासजी की पत्नी अभी आकर मुझे कह गई है कि यदि आज सत्यपाल नहीं गया तो घर में आग लगा दी जावेगी। जमींदार फिर कुछ नहीं कर सकेंगे।

नरबाधा तमतमा आई और बोली, "घर में ही आग लगाएगे। लगाने दो। आखिर, मालूम पडता है कि मुझे गाँव छोडना ही पडेगा। अगर वे मुझ अनाथ मातृ-पितृहीना पर अत्याचार करते हैं तो नर नहीं, राक्षस हैं।"

नरबाधा की इस प्रकार की बात सुनकर मोसी ने जान लिया कि अब यह तो किसी प्रकार से सत्यपाल को गाँव छोडने को नहीं कह सकती तो उसने पूछा, "नरबाधा ! क्या वीरेन्द्रबाबू इसमें कुछ सहायता नहीं कर सकते ? उन्होंने तुम्हारे बाबा के मरते वक्त तो काफी सहायता की थी, जिसको मैंने स्वय आँखों से देखा है।"

नरबाधा ने हिसापूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा, "वीरेन्द्रबाबू ? वे हमारे व्यासजी के दल के लोगों से किसी भी तरह कम नहीं है, मौसी ! मैं पुरुषों को पहचानने में कोई कमी नहीं रखती। पेटू जिस प्रकार से भोजन का लोभी होता है, उसी प्रकार से पुरुष नारी के सौन्दर्य के लोलुप होते हैं। कोई भी पुरुष ऑख उठा करके स्वार्थ के बिना नारी की ओर नहीं देख सकता और स्वार्थ के समय कितनी मीठी बातें बनाता है ? ओफ्फ !" कहती हुई वह सहसा रुक गई। वह विस्मृत हो गई थी कि वह अपनी मौसी से बातें कर रही है। उसने फिर अपने को सम्हालते हुए कहा, "उनमें जितनी शक्ति है उससे भी वे मुझ पर आक्रमण करें तो में भीख नहीं माँग सकती। नहीं माँग सकती मौसी। मैं दया की भीख !"

"अच्छा, तो मैं ही सत्यपाल को समझा करके कहूँ। बेटी ! आखिर जहाँ हमारे पुरखे इतने वर्षों से रह रहे हैं, उसको छोडना भी उपयुक्त नहीं। बेटी ! दो-चार बीघे जो जमीन बची

है वह हमारे लिए तो पर्याप्त है। व्यर्थ में तीसरे व्यक्ति के लिए अपने ऊपर आपत्ति का बोझ क्यों लें ?" मोसी ने पूछा।

नरवाधा के मुख से एक कठोर 'नहीं' शब्द निकला। मोसी जानती थी कि इस 'नहीं' को हाँ के रूप में परिणत करना असम्भव था। अत वह कुछ कहे विना ही रसोईघर में चली गई।

नरवाधा खाट पर पडी वडवडा रही थी, "भोजन नहीं मिलेगा तो उपवास करूँगी। रहने को जगह न मिलेगी तो विस्तृत नीलाकाश में रहूँगी। किन्तु मैं अन्याय, अत्याचार के आगे घुटने नहीं टेकूँगी।"

उसी समय सत्यपाल स्नान करके लौट आया और कहने लगा, "नरवाधा, अब मैंने निश्चय कर लिया है।"

"क्या ?"

"यही कि मैं आज ही इस गाँव से चला जाऊँगा।"

"क्यों ? उन लोगों के भय से ?"

"मैं किसी स डरता नहीं। किन्तु मैं सोचता हूँ कि वे लोग अशिक्षित और असभ्य हैं। उनको बिल्कुल मालूम नहीं है कि वे क्या करने जा रहे हैं और उसका क्या परिणाम होगा? अत उनका क्रोध बढाने का कारण बनकर यहाँ बैठे रहने से उन पर एक प्रकार का अनाचार होगा। इसके बाद भी मैं यहाँ रहूँगा तो वे अत्याचार करने के लिए बाध्य होंगे। मुझे तो उन पर तरस आता है। वे स्वय भी यह कह रहे हैं कि यदि मैं चला जाऊँगा तो उनके कहने को कोई शिकायत न रहेगी।"

"नहीं, सत्यपाल ! तुम त्रुटि कर रहे हो। तुम्हारे जैसे अनेक सत्यपाल आकर इस गाँव में निवास करने लगें तो उनको आपत्ति नहीं। उनका सारा झगडा तुम्हें लेकर नहीं है - झगडा है मेरे रूप और यौवन का। जब तक मेरा सौन्दर्य उनको सहज प्राप्य दीखता है, तब तक यह झगडा इसी प्रकार चलता रहेगा। चलो, अब चलें। बहुत देर हो गई, खाना खा लिया जाय।" नरवाधा ने कहा और उठकर बाहर की ओर चली गई।

उसी समय उसकी मौसी भी वहाँ आ धमकी। उसको देखकर सत्यपाल कहने लगा, "मौसी ! मैं तो किसी भाँति नरवाधा को समझा नहीं पा रहा हूँ।'

"क्या नहीं समझा पा रहा हो, बेटा ?"

' मैं तो यही चाहता हूँ कि व्यर्थ के झगडे में पड कर क्यों आपत्ति मोल ली जाय? मैं तो आज ही जाना चाहता हूँ, किन्तु नरवाधा तो मानती ही नहीं।"

यह बात सुन करके मौसी का मुँह प्रसन्नता के मारे खिल उठा। उसने कहा बेटा!

क्या तूने विचार बदल लिया है ? बहुत अच्छा किया, बदल लिया तो। तुम बुद्धिमान हो। भगवान तुम्हें दीर्घायु करे। मैं अभी जा रही हूँ नरबाधा को समझाने।" और चट-से रसोईघर में चली गई। नरबाधा ने पहले ही सब-कुछ सुन लिया था। मौसी के अन्दर प्रवेश करते ही उसने कहना प्रारम्भ किया, "मौसी ! तुम नारी हो। तुम विचार सकती हो कि लोग सत्यपाल को बाहर जाने के लिए क्यों कह रहे हैं ? मुझे कहते ग्लानि आती है। वे सोचते हैं कि यदि यह पुरुष चला जाए तो फिर वे मेरे रूप और यौवन का उपभोग स्वच्छन्दतापूर्वक करें। वाह रे पुरुषो ! तुम्हारी स्वार्थपरायणता को शत-शत बार धिक्कार है।"

नरबाधा की यह बात सुनकर मौसी के चेहरे पर न जाने कहाँ से तेज छा गया। उसने उत्तेजित स्वर में कहा, "मैंने भलीभाँति तेरी बात समझ ली है कि वह ऐसा कार्य नहीं है कि वे न कर सकते हों। अच्छा, बेटी ! बैठ। मैं अभी सत्यपाल को समझा कर आती हूँ।"

नरबाधा ने उसे रोकते हुए कहा, "मौसी ! तुम्हारे जाने की अब जरूरत नहीं। तुम्हारे जाने से पहले ही मैंने उसकी आँखें खोल दी हैं। मुझे अब बडी भूख लगी है, मौसी ! अब मुझसे सहन नहीं हो सकता, मुझे खाना दो।" और छोटे बच्चे की भाँति वह मचलने लगी।

मौसी कुछ समय के लिए मौन धारण किए रही और बाद में मुस्कराने लगी।

□□□

उन्नीसवाँ परिच्छेद

उस दिन नरबाधा और सत्यपाल साथ को घर में बैठे तर्क-वितर्क कर रहे थे कि विधवा-विवाह होना चाहिए या नहीं ? नरबाधा ने पूछा, "अच्छा, सत्यपाल ! तुम विश्वास कर सकते हो कि मैं पुनर्विवाह करूँगी ?"

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि जब सुरेन्द्र ठाकुर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में थे तभी एक युवक से नरबाधा का विवाह हो गया था। पर वह कुछ ही समय बाद मर गया। सुरेन्द्र जानते थे कि गाँव में लोगों को यह घटना मालूम होगी तो अनर्थ किये बिना नहीं रहेंगे। इसलिए उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा और जब-कभी विवाह के प्रस्ताव आये, उन्होंने किसी प्रकार बहाना लेकर टाल दिये।

नरबाधा के प्रश्न के उत्तर में सत्यपाल ने कहा, "यदि तुम विवाह कर लोगी तो मैं खुश ही होऊँगा, नरबाधा !"

"हाँ, तो मैं विवाह करूँगी, सत्यपाल !"

"तब मैं वर की तलाश करूँ ?"

"नहीं ! वर मैंने स्वय ढूँढ लिया है।" इसी समय सुमन वहाँ किसी प्रकार पहुँच गई। उसको देखकर उसके कुछ कहे बिना ही नरबाधा ने सत्यपाल को सम्बोधित करके पुन कहा, "मैं वीरेन्द्रबाबू से शादी करूँगी, सत्यपाल !"

सुमन इसके आगे कुछ न सुन सकी। वह बाहर आई और पालकी पर बैठकर घर लौट गई।

इसके बाद ही ठाकुर उमरावसिह ने वहाँ पहुँचकर आवाज दी, "नरबाधा !

नरबाधा आवाज सुनकर तुरन्त बाहर चली आई और उनकी पदरज लेते हुए अन्दर चलने को कहा। ठाकुर साहब ने उसकी बात का कुछ भी जवाब न देते हुए पूछा, "सुमन कहाँ है ?"

नरवाधा ने जब कोई उत्तर नहीं दिया, तो उन्होंने पुन प्रश्न किया, "सुमन यहाँ आई थी ?"

"आई तो थी, किन्तु कुछ कहे बिना लौट गई।" ठाकुर साहब के आश्चर्य ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा, "यह क्या कह रही हो, नरवाधा ? कुछ कहे बिना ही गई ?"

नरवाधा ने कोई जवाब नहीं दिया और थोडी देर चुप रहने के बाद बोली, " बैठेंगे नहीं, भैया ?"

"मैं तो बैठने के लिए ही आया था। पर सुमन इस तरह क्यों चली गई ? उ तबीयत अवश्य खराब हो गई है, अन्यथा वह इस प्रकार चली नहीं जाती।" ठाकुर साह कहा।

नरवाधा ने पूछा, "आपको इतनी देर क्यों हो गई है, भैया ?"

"हम दोनों गगा तट तक घूमने निकले थे। सोचा था, वहाँ से लौटकर थोर्ड तुम्हारे यहाँ बैठेंगे। वहाँ सुमन की तबीयत नहीं लगी। इसलिए वह जल्दी आ गई। अच्छा ठहरो !" कहकर ठाकुर साहब ने साथ में आये सन्तरी शरणानन्द को एकान्त में लेकर कहा और फिर लौटकर बोले, "अच्छा, चलो नरवाधा !"

ठाकुर साहब अन्दर जाकर एक खाट पर बैठ गये और सत्यपाल को देखकर "तुम यहाँ ही हो सत्यपाल ! अच्छा हुआ। हाँ, सुनो। मैंने प्रबन्ध कर दिया है कि रात मे सिपाही तुम्हारे घर की रखवाली करेंगे। कारण, व्यासजी और उनके आदमियों पर विश्वार किया जा सकता।"

"क्यों, भैया ! इस डर से कि वे लोग आग लगा देंगे ?"

"हाँ !"

"पर अब उसकी कोई जरूरत नहीं, भैया ! कारण, मैं नहीं समझती थी कि a भी निष्ठुर हो जायेंगे और यदि हो भी गये तो चार सन्तरी उन्हें रोक नहीं सकते।"

ठाकुर साहब उसे समझा-समझा कर हार गये। पर वह नहीं समझ सकी। 3 वे उठकर चले गये।

उसके बाद सत्यपाल ने कहा, "जगली ! मैं तुम्हारे इस कार्य को समर्थन के समझता हूँ।" और उसने मुँह घुमा लिया।

नरवाधा ने पूछा, "किसका समर्थन, सत्यपाल ? ' और फिर थोडी देर रुकव उठी, ' सत्यपाल ! जब पुरुष यह दावा करता है कि वह नारी के हृदय को पहिचानता मुझे हँसी आती है। यही वीरेन्द्र बाबू अभी मुझ पर तीन दिन पहले जान दे रहे थे। उ

जब उन्हें ठुकरा दिया है तो आज उन्हें पाकर सुमन घमण्ड दिखाने आई थी। सत्यपाल ! मैं साफ कहती हूँ कि यद्यपि मैंने वीरेन्द्र को ठुकरा दिया था, फिर भी मैं उसे दूसरे का होने नहीं दे सकती।" और पागलों की तरह उठकर वह वाहर चली गई।

थोडे ही समय वाद वह माथे पर ठण्डा कपडा रखकर आई और बोली, "उस समय मुझे ऐसा लग रहा, मानो किसी ने सारे शरीर में आग लगा दी हो। तुम अभी कहीं जाना नहीं, सत्यपाल ! तुमसे एक आवश्यक काम है। में जानती हूँ कि मैंने तुम्हारे दिल पर चोट पहुँचाई है।"

" पर, नरबाधा ! तुमने ऐसी चोट पहुँचाई है जो सहन नहीं की जा सकती।"

"जानती हूँ, फिर भी मुझे क्षमा करना ही होगा, सत्यपाल !"

❑ ❑ ❑

दूसरे दिन सवेरे करीव चार वजे थे। सुमन कल शाम की घटना को ही अभी तक सोच रही थी और उसे नींद नहीं आ रही थी। वह विचार कर रही थी कि मानव किसी वस्तु की इच्छा करके कर ही क्या सकता है, जब ईश्वर ही विरोधी हो ? उस वक्त उसका दिल भुना जा रहा था।

इधर सत्यपाल और नरवाधा भी अपनी-अपनी चारपाई पर पडे कुछ सोच रहे थे। रात काफी बीत गयी थी, इसलिए सो गये। अचानक कई आदमियों के पैरों की आहट सुनकर सत्यपाल उठकर बैठ गया। उठते ही उसने देखा कि नरवाधा के कमरे में आग लग गई है। उस कमरे में नरवाधा के साथ उसकी मौसी भी थी। सत्यपाल एक ही झटके में उछलकर दरवाजे पर पहुँचा और पुकारने लगा, "नरवाधा ! ओ नरवाधा !"

नरवाधा गहरी निद्रा में सो रही थी। सत्यपाल की चीख सुनकर उसने ज्योंही आँखें खोली, उसने देखा कि कमरे की छत में आग लगा दी गई है। उसने जल्दी से अपनी मौसी का हाथ पकडा और उसे उठाकर वैठा दिया और बोली "डरो मत, मौसी ! जल्दी बाहर निकल चलो।" और उन्हें साथ लेकर वाहर चली आई। सत्यपाल भी बाहर आ गया।

मौसी रोती हुई बोली, "सत्यपाल ! नरवाधा के गहने नहीं निकले।"

"नरवाधा के गहने थे, मौसी ?" सत्यपाल ने पूछा।

"हाँ, बेटा ! नरबाधा की अम्मा मरते समय उसे दे गई थी। इतना कष्ट पडने पर भी उसने उन गहनों को नहीं छुआ। सोने वाले कमरे में जो चमडे का सूटकेस है, उसी में गहने पडे हैं।"

इसी समय वहाँ काफी आदमी इकट्ठे हो गये। सत्यपाल ने नरवाधा के पीले चेहरे की ओर दृष्टिपात किया और अचानक अदृश्य हो गया।

नरवाधा इसे कसे सहन कर सकती थी ? वह दौडकर घर की थलकन पर पहुँच गई और पुकारने लगी, "सत्यपाल !"

इसी समय रसोईघर की छत भडाभडा कर जलती हुई गिर पडी और नरवाधा असह्य ताप के कारण जरा अलग होकर खडी हो गई। वह अब भी पुकार रही थी, "सत्यपाल !"

इसी समय सत्यपाल, "नरबाधा, नरवाधा !" पुकारता हुआ आया और उसे समक्ष खडी देखकर कहा, "मैं तुम्हारे गहने न वचा सका।" उसका सारा तन झुलस कर फूल गया था। उधर नरवाधा भी वेहोश होने जा रही थी। नारी की इस दशा को देखकर सत्यपाल की पुरुष शक्ति पुन जाग्रत हो उठी। वह हिम्मत कर नरवाधा को अपने कधों पर उठाकर वाहर ले गया।

जो लोग देखने आये थे, वे चले गये। नरवाधा और सत्यपाल वेहोश पडे थे। एक विधवा वृद्धा उनके पास बैठी उनकी दशा देखकर आँसू वहा रही थी। मनुष्य रूपी पशुओं की पाशविक क्षुधा, मानो शान्त हो रही थी।

बीसवॉ परिच्छेद

विश्व में दु खद सन्देश पहुँचाने वालों की कमी नहीं है। सुख की वात तो विश्व में मन्द गति से फैलती है, किन्तु दु खद वात हवा की भाँति तीव्रगति से फैल जाती है। प्रात काल ही त्रिपुण्डधारी घवडाया हुआ आया और ठाकुर साहव से कहने लगा, "ठाकुर साहव ! नरवाधा के मकान में आज रात को आग लगा दी।"

"आग लगा दी ! और नरवाधा, सत्यपाल और उसकी मौसी की जानें तो बच गईं ?"

"हॉं, सरकार ! लोग कह तो रहे थे कि वे लोग अभी जीवित हैं।"

"जीवित हैं तो हैं कहॉं ?"

"यह तो मुझे नहीं मालूम। मैं तडके ही वहाँ पहुँचा था तो उनके घर के आगे भीड लगी हुई थी। लोग कह रहे थे - आग घर में लगभग दो वजे रात को लगाई गई थी ओर नरवाधा और सत्यपाल करीब रात्रि के तीसरे पहर तक यहाँ थे। अव न जाने कहाँ चले गए हैं, पता नहीं।"

ठाकुर साहव ने कहा, "अच्छा तुम जाओ आर शरणानन्द सन्तरी को कहो कि वह व्यासजी को अभी का अभी पकड लावे। सीधे न आवें तो टेढे तरीके से ले आवें। तुम जाकर के स्टेशन पर उन तीनों का पता लगाओ। त्रिपुण्डधारी के चले जाने के बाद सुमन वहाँ अपने भैया के पास चाय और नाश्ता लेकर आई। उसको देखकर ठाकुर साहव ने कहा, "सुमन ! तुमने सुना ? '

"हॉं, भैया ! मैंने सुना। जो अवश्यभावी था, वह हुआ। इसके लिए अव कोई दण्डनीय नहीं है।"

"क्यों मेरा उत्तरदायित्व है कि मैं अत्याचारी को दण्ड दूँ। मेरी प्रजा पर अत्याचार

होता रहे ओर मैं जमींदार होकर इसको सहता रहूँ, यह केसे सम्भव हो सकता है ?" ठाकुर साहब ने कहा।

सुमन का दिल जल रहा था ओर आँखों ने आँसुओं के बदले शोले बरसाने शुरू कर दिये। उसने कहा, "भैया ! कहीं इस प्रकार से उत्तरदायित्व का निर्वहन हो सकता है ? आप भूल गये हो कि उसने आपकी सहायता अस्वीकार करदी ओर अब आपकी उपेक्षा करके न जाने कहॉ चली गई है। नहीं, भैया ! आप इस काण्ड में किसी को दण्ड नहीं दे सकते।' सुमन का कहते-कहते कण्ठावरोध हो गया।

इसको देख करके ठाकुर साहब भी व्याकुल हो उठे और चाय पीते हुए बोले, "मैं समय गया सुमन ! तुम कहती हो वैसा ही होगा।"

❑ ❑ ❑

उधर शरणानन्द सन्तरी वहाँ व्यासजी के घर पहुँचा, किन्तु क्या देखता है कि उनके घर के आगे भीड लगी है। उपदेश दिये जा रहे हैं। शरणानन्द सन्तरी ने जाते ही कहा, "चलो, व्यासजी ! आपको हुजूर बुला रहे हैं। अगर सीधे न चलोगे तो टेढे ले चलूँगा।" इतना कहकर वह व्यासजी को घसीटने लगा। किसी ने व्यासजी को छुडाया तक नहीं। व्यासजी चलते हुए बडबडा रहे थे कि सब नमकहराम और स्वार्थी हैं। आपत्ति काल में कोई किसी के काम का नहीं।

जब शरणानन्द व्यासजी को ले आया, तो उस समय ठाकुर साहब अन्दर बैठे थे। सूचना मिलने पर अन्दर से आना मिली कि व्यासजी को इस समय छोड दिया जाय। शरणानन्द को अकस्मात इस आदेश पर विश्वास नहीं हुआ। पर वह करता भी क्या ? आदेश को सुनकर उसका मुँह फक् हो गया था।

इधर त्रिपुण्डधारी स्टेशन से वापिस आ गया। उसने आकर ठाकुर साहब को सूचना दी कि नरबाधा और सत्यपाल दोनों कानपुर गए हैं।

ठाकुर साहब ने त्रिपुण्डधारी को, अपने हाथ में एक लिखा हुआ तार का फार्म देते हुए, कहा, ' देखो ! मैं कल कानपुर जा रहा हूँ। तुम अभी जाकर के इस तार को स्टेशन पर लगा आओ और आवश्यक कागजात पर आज शाम से पहले ही मेरे हस्ताक्षर करवा लेना।"

❑ ❑ ❑

दूसरे ही दिन ठाकुर साहब कानपुर पहुँच गए। वीरेन्द्र ठाकुर साहब [illegible] सामने आया। ठाकुर साहब ने घर जाकर वीरेन्द्र के माता पिता के साथ उसके [illegible] निश्चित कर ली और फिर अपने घर लौट आये।

इधर सत्यपान कानपुर पहुँचा। उसके साथ नरबाधा भी थी। [illegible]

एक अगूठी को बेचकर, नरबाधा के पहनने-ओढने का सामान लिया और एक मकान किराये पर लेकर वहाँ उसके साथ में रहने लगा।

एक दिन घूमते हुए, सत्यपाल न जाने क्या सोचकर, वीरेन्द्र के घर पहुँच गया। वीरेन्द्र ने सत्यपाल को देखकर बडी प्रसन्नता प्रकट की और पूछा, "नरबाधा कहाँ है, सत्यपाल ?"

सत्यपाल ने पीछे की सारी कहानी कह सुनाई और फिर कहा, "वहीं, जहाँ पर एकलिग भगवान का मदिर है और एक दुतल्ला मकान बना हुआ है। उसी में नरबाधा रहती है, चले जाइये।" और वीरेन्द्र से अधिक बात किए बिना ही वापिस तेजी के साथ लौटकर चला गया। वीरेन्द्र को कुछ समझ में नही आया कि सत्यपाल क्यों आया था ? और क्यों इतना जल्दी ही, बात किये बिना, वापिस चला गया ? उसी समय वीरेन्द्र सत्यपाल के बताए हुए निश्चित स्थान पर चला गया और वहाँ जाकर पुकारने लगा, "नरबाधा ! ओ नरबाधा !"

नरबाधा अपने मकान की खिडकी में खडी थी। वह चौंक कर इधर की ओर देखने लगी तो देखा कि वीरेन्द्रबाबू खडे थे। "ओह ! वीरेन्द्रबाबू, आइये ! घोर आश्चर्य ! मैं इतनी देर से आप ही को याद कर रही थी।" इस समय नरबाधा के चेहरे पर मुस्कराहट थी।

वीरेन्द्र ने कहा, "नरबाधा ! मैं तुम्हारे से क्षमा माँगने आया हूँ। मैंने तुम्हारे साथ जो बरताव किया, उस सबको तुम विस्मृत कर दो और मुझे अपने भाई के रूप में स्वीकार करो। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि अभी केसी परिस्थितियाँ गुजर रही हैं ? मुझे सत्यपाल से यह भी मालूम हुआ हे कि तुम नौकरी करना चाहती हो। क्या मेरे रहते - तुम्हारे भाई के रहते इस प्रकार का सोचना तुम्हारे लिए उचित है ? मुझे क्षमा करो नरबाधा ! तुम मुझे भाई के रूप में स्वीकार करो। आज से मेरा यह परम कर्तव्य हो गया कि मैं अपनी बहन की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करूँ।" और सजल नेत्रों से नरबाधा की ओर देखने लगा।

नरबाधा आखिर नारी थी। वह फूट-फूट कर रोने लगी और कह पडी, ' भैया, तुम मुझे अधिक लज्जित मत करो। ' उसके कुछ अधिक कहने के पूर्व ही वीरेन्द्र घर से बाहर निकल पडा और गृहस्थी का पूरा सामान लेकर तुरन्त ही लौट कर आ गया। आते वक्त वह दस हजार रुपयों के नोट भी लाया था।

नरबाधा रात और दिन सत्यपाल की प्रतीक्षा करती रही, किन्तु सत्यपाल उस दिन के बाद वापिस लौट कर नहीं आया।

❑ ❑ ❑

इसी प्रकार महीनों पर महीने बीतते गए, किन्तु सत्यपाल वापिस लौटा ही नहीं। वीरेन्द्र प्रतिदिन नरबाधा के पास आकर उसके सुख-दु ख की बात पूछ जाता। अब नरबाधा अपने जीवन को शान्तिमय बिताने लगी, किन्तु कभी-कभी उसके हृदय में पूर्व की बातें जागृत होतीं

तो वह कह पडती, "पुरुष कितने स्वार्थी और कामलोलुप हैं कि वे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कोई कसर उठा नहीं रखते, यहाँ तक कि दूसरों को धोखे में डालने के बजाय स्वय धोखे में फँस जाते हैं।" इतना कहते-कहते वह एक बार मौन धारण करके फिर चीख पडती, "वाह री मदान्ध मानवता ! क्या तुम परिवर्तित होकर शांति का राज्य स्थापित कर सकोगी ?" इस प्रकार से दिन बीतते गये।

❑ ❑ ❑

थोडे दिनों के बाद ठाकुर उमरावसिह वहाँ आये। वे तीर्थ जा रहे थे। उन्होंने आते ही नरबाधा को देखकर कहा, "नरबाधा, मैंने सारा काम तरुण को सौंप दिया है और मैं तीर्थ जा रहा हूँ।" नरबाधा इस बात को सुनकर कहने लगी, "भैया ! मैं भी चलूँगी।" इतना कहकर उसने अपने भैया वीरेन्द्र और भाभी सुमन की पद-रज सिर पर ली और ठाकुर साहब के साथ चली गई। उमरावसिह भी वीरेन्द्र से प्रेम के साथ मिले और नरबाधा को साथ लेकर शांतिपूर्वक तीर्थों की ओर अग्रसर हो गये।

❑❑❑